

श्री अमरनाथ
कश्मीर यात्रा

Pilgrimage to Shree AMARNATH
KASHMIR

स्वाध्याय-भवन प्रकाशन १.

श्री अमरनाथ-कश्मीर यात्रा

Pilgrimage to the famous cave of

Shri Amar Nath—Kashmir

1. **The Glory of Amar Nath with Hindi Translation, by Yuvaraj Shri Karna Singh, M.A., Sadar-Riyasat Jammu and Kashmir State**

2. श्रीमद्अमरनाथमाहात्म्यम्-हिन्दी-अनुवादसहितम्

3. विविधशिवस्तोत्रसंग्रहः-हिन्दीभाषानुवादसहितः

4. **Guide for Kashmir Visitors :—**

(*a*) Pathankot to Srinagar (*b*) Srinagar (Kashmir) Gardens and Lakes (*c*) Pahalgam (Kashmir) (*d*) Gulamrg (Kashmir) (*e*) Appendixes-Permit to enter Kashmir, Fares and House-boat charges etc.

१९५८

संपादक, अनुवादक तथा प्रकाशक :—

मदन मोहन शर्म्मा,

शास्त्री, सर्वदर्शनधर्मशास्त्री, वेदाचार्य, *M.A.*

बहादुरपुर-होशियारपुर, पंजाब ।

स्वतनयां ददतो द्रुतचेतसो
हिमगिरेः करुणाम्बुकणैः कृतम् ।
तुहिनलिङ्गमयं वपुरद्भुतं
धृतवतेऽमरनाथ नमोऽस्तु ते ॥

॥ समर्पणम् ॥

'त्वदीयं वस्तु देवेश
तुभ्यमेव समर्पये ।'
'तेरा तुझ को सौंपते
क्या लागत है मोर ॥'

देवाधिदेव भगवान् श्री अमरनाथ जी के चरणों में यह उन्हीं का पत्रपुष्प श्रद्धाभक्तिपुरःसर सादर समर्पित हो

लेखक तथा अनुवादक ।

यात्रा के सम्बन्ध में जानकारी योग्य बातें :—

श्री अमरनाथ जी की गुफा की यात्रा राज्य की ओर से वर्ष में एक बार ही होती है। यह मुख्य यात्रा एक महन्त के अधीन होती है जो कि दशनामी अखाडा, बाज़ार माईसोमां, श्रीनगर से छड़ी लेकर जाता है। जो (छड़ी) कि श्री अमरनाथ जी की पताका की प्रतीक है और श्रीनगर से अमरनाथ गुफा तक ले जाई जाती है। इस यात्रा में यात्री रक्षाबन्धन पूर्णिमा के दिन श्री अमरनाथ जी के दर्शन करते हैं, जो दिन प्रायः २५ जुलाई से २५ अगस्त के समय के लगभग प्रतिवर्ष पड़ता है। यदि मार्ग खुला हुआ हो और मौसम ठीक हो तो यह यात्रा जून, जुलाई तथा अगस्त के महीनों में की जा सकती है।

रक्षाबन्धन वाली यात्रा के लिये जम्मू काश्मीर राज्य की ओर से विशेष प्रबन्ध किया जाता है। यात्रियों की सहायता के लिये पुलिस तथा चिकित्सा का विशेष प्रबन्ध यात्रियों के जाते तथा लौटते हुए दोनों ओर रहता है। राज्य की ओर से राज्य का एक अधिकारी कैम्प अफसर बना दिया जाता है जो कि मुख्य यात्रा के समय यात्रा की पूरी व्यवस्था तथा देखरेख करता है।

श्रावण शुक्लपक्ष की तृतीया या पञ्चमी को श्रीनगर के दशनामी अखाडे में छड़ी की पूजा होती है और यात्रा पैदल (पुराने रिवाज के अनुसार) चल पड़ती है। एकादशी को सब लोग पहलगाम पहुंच जाते हैं, उसी दिन मोटर द्वारा पहुँचने वाले भी पहलगाम पहुंचते हैं। दूसरे दिन यात्री चन्दनवाड़ी पहुंचते हैं। यात्रियों को यात्रा के लिये खाने का सामान और तम्बू आदि पहलगाम से ही लेने होते हैं, आगे की मंज़िलों पर सब सामान पहलगाम से ही जाता

है, चन्दनवाड़ी के आगे तो लकड़ी या कोयला भी अपने साथ रखा हुआ ही काम आता है। त्रयोदशी को यात्री शेषनाग पहुंचते हैं और चतुर्दशी को पञ्चतरणी, यह आखिरी पड़ाव होती है। पूर्णिमा को श्री अमरनाथ जी के दर्शन करके सब लोग जल्दी में लौटते हैं और जैसा सम्भव हो वापिस आते हैं। वहां रुकने पर वर्षा का भय बना रहता है।

यात्रा के लिये मौसम खुलते ही राज्य सरकार की ओर से सड़क की मरम्मत आरम्भ कर दी जाती है और रास्ते में जमी बर्फ की जांच पड़ताल की जाती है ताकि कभी कोई यात्री ग़लत स्थान पर पैर रख कर बर्फ के नीचे न पहुंच जावे। इस के लिए बर्फ पर चलने योग्य मार्ग पर निशान लगा दिये जाते हैं। फिर भी लोग गलती करते हैं और बर्फ पर गलती से गिर पड़ कर हानि उठाते हैं, उसके लिए सरकार की ओर से काफी प्रबन्ध रहता है, जिस से लोगों को समय पर सहायता पहुंचाई जाती है। दूसरी सावधानी इस विषय में भी रखनी चाहिये कि चन्दनवाड़ी से कुछ मील आगे जाने पर पेड़ों का नाम तक नहीं मिलता और छोटे-छोटे पौधे फूल लिये खड़े रहते हैं। यात्री लोभ से फूल तोड़ कर सूंघ लेते हैं परन्तु उन में कई फूल विषैले भी होते हैं, जिनके सूंघने से यात्री बेहोश हो जाते हैं। अतः इस विषय में भी यात्रियों तथा पर्यवेक्षकों को सावधान रहना चाहिये और अपने लोभ को संवरण करना चाहिये।

यात्री को चाहिये कि वह यात्रा के लिये आवश्यक कपड़े तथा खाद्य और निवास के लिये आवश्यक तम्बू आदि की व्यवस्था कर ले विशेष जानकारी के लिये परिशिष्ट देखें अथवा राज्य के अधिकारियों से पूछताछ करें। जम्मू कश्मीर राज्य के बाहर से जाने वाले

यात्रियों को अपने राज्य से काश्मीरप्रवेशपत्र-पर्मिट भी ले लेना चाहिए। इसकी विशेष जानकारी के लिए परिशिष्ट देखें।

कपड़े :—ऊंचे पहाड़ों में तापमान अधिक गिर जाता है अतः यात्रियों को आवश्यक है कि वे अपने साथ अधिकाधिक गर्म कपड़े ले जावें।

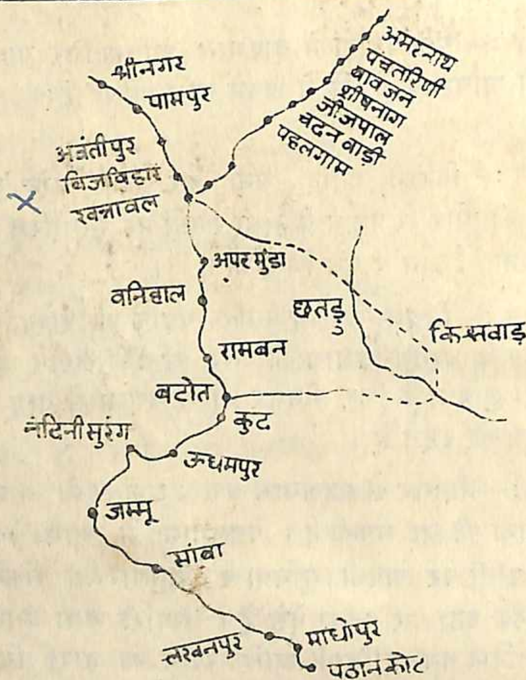
खाद्य :—बिस्कुट आदि बना कर साथ रखे जा सकते हैं। राज्य की ओर से पड़ाव के सभी स्थानों पर निर्धारित मूल्य पर भोजन-सामग्री, ईन्धन व दूध मिल जाता है।

निवास :—निवास के लिये प्रत्येक पड़ाव पर राज्य की ओर से तथा राज्य के धर्मार्थ-विभाग की ओर से तम्बू लगाए जाते हैं। अपनी विशेष सुविधा के लिए श्रीनगर या पहलगाम से तम्बू किराये पर ले लेने अच्छे रहते हैं।

यात्रा :—श्रीनगर से पहलगाम तक ५६ मील की यात्रा कार या बस के द्वारा की जा सकती है। पहलगाम से आगे पैदल या घोड़े अथवा डांडी पर अपनी सुविधा के अनुसार जा सकते हैं। बच्चों को भारिक उठा कर पहुंचा देते हैं। सवारी तथा सामान के लिये घोड़े, भारिक तथा डांडियां आदि राज्य के द्वारा निर्धारित दरों पर पहलगाम से मिल सकते हैं।

दूरी :—पठानकोट से जम्मू ६७ मील। जम्मू से श्रीनगर २०१ मील (नई गुफा के बन जाने से अब यह १८ मील कम हो गई है)। श्रीनगर से पहलगाम ५६ मील। पहलगाम से चन्दनवाड़ी ८ मील। चन्दनवाड़ी से शेषनाग (वावजन) ७ मील। शेषनाग से पञ्चतरणी ८ मील। पञ्चतरणी से श्री अमरनाथ जी की गुफा ५ मील।

पठानकोट से श्री अमरनाथ जी तक मार्ग



Way to Shri Amarnath Ji from Pathankot.

परिचय

भगवान् अमरनाथ जी का पवित्र तीर्थ जम्मू व काश्मीर राज्य के पर्वतों में है। मेरा जन्म भी इसी राज्य में हुआ है और १६४६ में मुझे इस के दर्शन कर सकने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। उस के बाद पाकिस्तान के जन्म से परिस्थितियां ऐसी बन गईं कि अपने श्रद्धा-भाव को व्यक्त करने का कोई मार्ग प्राप्त न हुआ। इधर १६५५ की फरवरी में जब युवराज श्रीकर्णसिंह जी होश्यारपुर पधारे तो उन्होंने अपनी यात्रा का विवरण मुझे दिया, उन की मुझ पर अपार कृपा है, अत मैंने उस (The Glory of Amarnath) का हिन्दी अनुवाद करके उनके जन्म-दिन पर उन्हें अर्पित किया। इस पर उन्होंने यह इच्छा प्रकट की, कि इसे अधिक लोगों के लाभ-योग्य बनाया जाय, इधर मेरी पत्नी के रोग-ग्रस्त होने से मुझे अपनी नौकरी छोड़ देनी पड़ी और M. A. करने के लिए मेरठ कालेज में प्रवेश लेना पड़ा। इस उथल-पुथल में ५५ सन् की अमरनाथ-यात्रा के समय यह प्रकाशित न किया जा सका। १६५६ के ग्रीष्मावकाश में 'वीर अर्जुन' जालन्धर, में 'जय अमरनाथ' शीर्षक से इस का थोड़ा सा भाग प्रकाशित हुआ, परन्तु वहां पर भी कुछ ऐसी अड़चनें आईं कि इस की पूर्णता न हो सकी। अब यह पुस्तिका यात्रियों, पर्यवेक्षकों तथा पर्यटकों की सुविधा एवं परिचय के लिए छाप कर प्रकाशित की जा रही है। श्रीमान् युवराज महोदय की लेखनी अमृतरस टपकाती है अतः उसे मूल रूप में अंग्रेजी में भी रखा गया है, साधारणजन भी उस से परिचित हो सकें, अतः सरल हिन्दी में अनुवाद भी साथ दिया है। यह तीर्थ अतिप्राचीन है और पौराणिक कथाएं तथा माहात्म्य भी लोगों को विदित हो सकें इस दृष्टि से

'भृङ्गीशसंहितान्तर्गत' श्रीमदमरनाथ-यात्रामाहात्म्य भी अनुवाद सहित साथ ही दे दिया है—प्रत्येक पड़ाव पर इस का पाठ करने से श्रद्धालु भक्त-जन पुण्य प्राप्ति करेंगे और आत्मसन्तोष भी पायेंगे यात्रा में भ्रमण के साथ ही संगीत भी आवश्यक है तथा धार्मिक-यात्राओं में कीर्तन एक मुख्य अङ्ग है—इस दृष्टि से शिव जी के मुख्य-मुख्य स्तोत्र जो कि श्री शङ्कराचार्य. पुष्पदन्त, रावण तथा तुलसीदास आदि प्रसिद्ध शिवभक्तों के लिखे हुए हैं अनुवादसहित इस के साथ लगा दिये हैं। इस प्रकार अपनी दृष्टि से यह भरसक प्रयत्न किया गया है कि श्रद्धालु भक्तों की श्रद्धा बढ़े और जिज्ञासुओं की जिज्ञासा-पूर्ति हो। आवश्यक चित्र भी यथासम्भव लगा दिये हैं। यदि कोई कमी हो तो पाठक सूचित कर देने की कृपा करें। अगले संस्करण में उसे पूर्ण करने का प्रयत्न किया जावेगा।

यह यात्रा प्रतिवर्ष एक ही बार होती है और वह शुभ दिन रक्षा-बन्धन की पूर्णिमा है। इस के पूर्व और बाद में भी कुछ लोग यात्रा करते हैं। यह तीर्थ समुद्रतल से १४ हज़ार फुट की ऊंचाई पर है और यहां पर हर समय बादलों का भय बना रहता है। पहाड़ी और दुर्गम मार्ग है। जिस से वर्ष भर यात्रा कर सकना संभव ही नहीं है। दूसरा कारण यह है कि लिङ्ग पूर्णिमा के दिन ही पूर्ण होता है—ऐसा कहा जाता है, अतः यात्री पूर्णिमा को ही वहां पहुंचते हैं। अमरनाथ-माहात्म्य में इसे रसलिङ्ग या सुधालिङ्ग कहा गया है, यह वस्तुतः Ice लिङ्ग है। बाहर की बर्फ Snow है और गुफा के अन्दर यह कुछ स्थानों पर ही चूने वाले पानी के जमने से बनता है। जो लिङ्ग ऊंचा होता है उसे शिवपिण्डी कहा जाता है, परन्तु उस के साथ बनने वाली पिण्डियां पार्वती, गणेश, कार्तिकेय तथा नन्दी की मानी जाती हैं, वह छोटी होती हैं। बर्फ का भेद स्पष्ट दीखता है।

हो सकता है अन्दर के पानी के जमने में चन्द्रमा का आकर्षण कारण हो, इसी कारण शिवलिङ्ग पूर्णिमा को पूर्ण होता हो और शेष दिन कम रहता हो, परन्तु यह गवेषणा Research का विषय है, भक्ति और श्रद्धा का नहीं। वहां पर कबूतरों का परिवार भी है उन्हें भी कई प्रकार की कल्पनाओं से देखा जाता है, वह भी यात्रियों की भान्ति गरमी में ही वहां पहुँचते हैं या सदा वहीं रहते हैं, यह भी कोई नहीं जानता—हां इतना निश्चित है कि वहां पर इस जाति के पक्षी सदा से देखे जाते हैं, इसलिए हो सकता है कि यह वहीं के निवासी हों।

भगवान् के विभूतिपूर्ण स्थानों में से यह एक विशिष्ट स्थान है। भारत के कोने-कोने से धर्म-प्रेमी यात्री यहां प्रतिवर्ष आते हैं और दर्शन कर अपने आप को कृतकृत्य मानते हैं। विदेश से भी बहुत से लोग इस यात्रा को करते हैं। यह पुस्तक उन सब के उपयोगी हो सके ऐसा प्रयास किया गया है। आशा है भक्त-जन हमारे इस प्रयास में हमारा उत्साह बढ़ावेंगे।

बहादुरपुर—होश्यारपुर, पंजाब। मदनमोहनशर्मा
मई १६५७ ईस्वी

अथ

श्री अमरनाथ कश्मीर यात्रा

भाग १.

THE GLORY

OF

AMARNATH

by

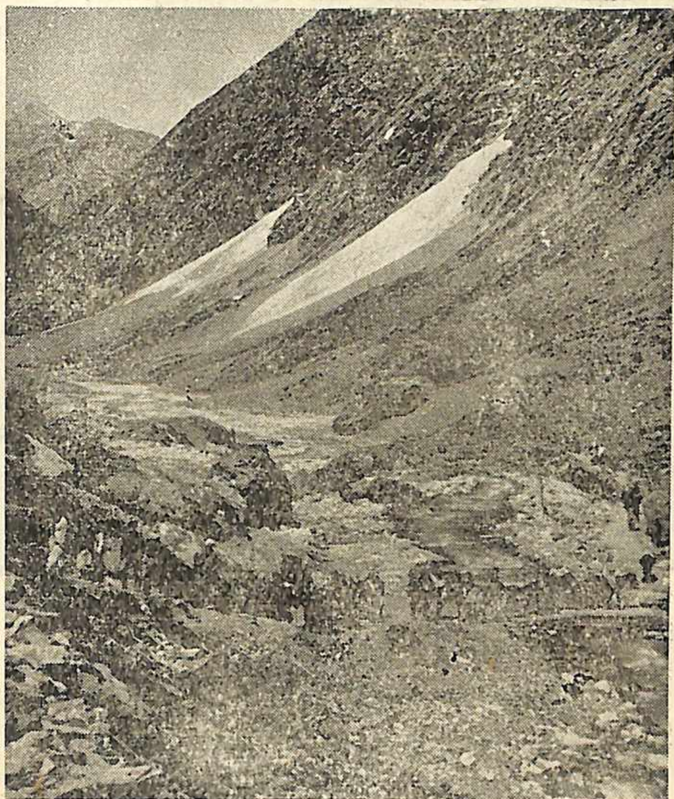
YUVARAJ SHRI KARNA SINGH M.A.,

Sadar-i-Riyasat Jammu & Kashmir State



कर्पूरगौरं करुणावतारं, संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे, भवं भवानीसहितं नमामि ॥

श्री अमरनाथ जी की गुफा की ओर परम्परागत यात्रा मार्ग में जा रही है।



The traditional *yatra* on the way to the cave. The journey is made on foot or on horseback.

The Glory of Amarnath के अंग्रेज़ी में मूल लेखक जम्मू-कश्मीर राज्य के जनप्रिय शासक व कर्णधार, युवराज श्री कर्णसिंह जी सदर-इ-रियासत, जिन्होंने वंशपरम्परागत राज्यपद्धति का परित्याग करके लोकहित के लिए एक अप्रतिम आदर्श प्रस्तुत किया।



भास्वद् भास्कर-वंश[१]-भासुर-मणिः प्राज्ञो गुणग्रामणीर्[२]
बिभ्राणो रणवीर[३]भूषितविभां भव्यं प्रताप[४]ं हरेः[५]।
ताराधीश[६]मरीचिशोभितयशो[७]राज्यस्य लक्ष्मीं शुभां
जीव्यादब्दशतं मुदाऽमर[८]निभः श्रीकर्णसिंहो नृपः ॥

टि० — १. सूर्यवंश २. श्रीमहाराजा गुलाबसिंह ३. श्रीमहाराजा रणवीरसिंह ४. श्रीमहाराजा प्रतापसिंह ५. श्रीमहाराजा हरिसिंह ६. श्रीमती महारानी तारादेवी कटोच ७. श्रीमती युवरानी ८. श्रीभगवान् अमरनाथ तथा श्रीमहाराजा अमरसिंह।

PREFACE

This essay was first published in the form of three articles in the Sunday Editions of "The Hindustan Times."

Many friends, among them Shri Devdas Gandhi, Managing Editor of "The Hindustan Times," suggested to me that the articles should be published in the form of a booklet, as they felt there were many throughout the country who would be interested in the famous and hallowed Cave of Amarnath.

This holy cave of Shiva is one of the most important places of Hindu pilgrimage. It is also a major tourist attraction in Kashmir, and I have taken this opportunity of adding a short appendix giving some information which might prove useful to prospective pilgrims and tourists.

Jammu, K. S.
April 13, 1954.

श्री अमरनाथ जी की गुफा को जाने वाले मार्ग में घने जंगलों से भरी पहाड़ियों में कैम्प लगे हुए हैं।



Camping on the way to the Holy Cave, in a setting of thickly wooded mountains.

THE GLORY OF AMARNATH

"AMARNATH," the Immortal Lord. The very word has always held for me a strange fascination. I had always felt ashamed that I had never visited this famous place of pilgrimage so near my home, while thousands of people from the farthest corners of India make the pilgrimage every year. Thus I had, for several years, been feeling a desire to make the trip, and in the last two or three years this amorphous desire crystallised into a keen and distinct craving.

The traditional *yatra* (pilgrimage) reaches the cave every year on the Raksha-Bandhan Purnima (full-moon day), which in 1953 fell on the 24th of August. However, I decided, as many do, to go one month earlier. After days of preparation, we finally left Srinagar for Pahalgam on the morning of the 23rd July. The weather that day was very bad, which made us all rather worried, as the trip to the cave leads over narrow and steep mountain paths which become very treacherous in rain. Nevertheless, we set out with a grim determination to make the attempt, even if it meant undergoing considerable inconvenience.

The Holy Cave of Amarnath beckons its devotees to a height of 13,000 feet. It is 28 miles from Pahalgam, but, small though this distance may seem on paper, in reality it is a very considerable trek. No vehicular traffic can go beyond Pahalgam, and the mountain path has to be traversed either on foot or on horse-back. Owing to a disability caused by a series of mishaps several years ago, it is not possible for me

to ride or to walk long distances, particularly uphill. I was, therefore, obliged to travel in a dandy, much as I disliked having to avail myself of that form of transport.

After lunch at the Pahalgam Club, a delightful rendezvous, we set off for Chandanwari, our first camp lying eight miles from Pahalgam. By now, the rain which started early in the morning had settled into a steady, sharp drizzle, turning the earth into a rich squelchy chocolate. The Lidder stream rushes and tumbles down the narrow valley and the path to Chandanwari leads up its right bank. We started at about three in the afternoon, the three ladies in the party, including my wife, insisting on walking despite the deep and slippery mud. I go into my dandy manned by sturdy Kashmiri porters, and the rest of the party either rode or walked.

Luckily the rain was not heavy enough to block out the lovely scenery that surrounded us as we trudged along. The sound of the stream, a hundred yards below us on our right, had a soothing quality. Both sides of the valley were thickly wooded. After we had traversed the first two miles along a narrow and uneven path, the roar of the waters grew louderr and we suddenly emerged within a few yards of the Lidde stream.

The water rushes along tripping over itself, as if in a terrific hurry to get somewhere. Here the valley widens, and on either side, the steep mountains are covered with green. The rich grass which sweeps almost up to the summits, the

tall pines and birches, the numerous varieties of shrubs and bushes all add their individual shade of green, so that the whole scene looks like a vast green checker-board curving up to the sky. Some stray cloudlets, separated from their parent mass, venture timorously down the mountainside, only to get lost among the ridges.

As we proceed, I throw my head back and close my eyes. The swinging motion of the dandy and the continuous roar of the stream combine to produce an almost hypnotic effect. I let my mind dwell upon the majestic figure of the great Lord Shiva as he sits calm and inscrutable, lost in profound meditation. It is to the Shrine of Madadeva that I am bound, and I hum one of the numerous songs that have been composed in his glory.*

After four hours of an exhausting trek (exhausting, I may add, not for me being comfortably carried but for the porters and those who walked) we reached Chandanwari. Our camp had already been pitched and a hot cup of tea soon revived our spirits somewhat dampened by the bad weather.

Before dinner, we all got together in the dining tent and, joined by some of the other pilgrims, sang *bhajans* for about an hour. I greatly enjoy these *kirtans* and we kept up these sessions regularly every evening during the *yatra*.

Our *kirtan* was followed by a fairly substantial dinner, after which we all flopped gratefully into bed. Before turning

*Kindly refer the STOTRA SANGRAH.

in, I noticed with trepidation that the sky was thickly overcast.

As soon as I awoke the next day, at about seven, I jumped out of bed and threw open the flap of my tent. The bright sunlight streamed in and I looked out upon a clear, blue sky. All traces of cloud had vanished and I was struck by the beauty of Chandanwari, which I had missed the previous day. Chandanwari is a small camping-ground, about a square mile in area, situated at the bottom of a gigantic cup, the sides of which are deeply-wooded mountains which tower against the sky. In the freshness of the morning sun it was very beautiful.

After an early breakfast we set out for Sheshnag, our next destination, at eight. It is seven miles from Chandanwari to Sheshnag, but the path is steep and treacherous. For nearly half a mile we follow the bank of the Lidder. Then we come to a very steep two-mile climb known as Pissu Ghati, which rises some 2,000 feet above the river. The path is narrow and the turns sharp. In bad weather this incline becomes slippery and dangerous. Today, however, the weather was fine. Nevertheless it was an exhausting climb.

A pilgrimage symbolises, as it were, the long pilgrimage of the soul towards its ultimate, sublime goal. Almost all the most important pilgrimages in India take the devotee along dangerous and hazardous paths, testing his devotion at every step. It is seldom possible for the pilgrim, if he is deterred, to reach his goal. If he pushes on bravely with courage and confidence and with faith in God, he is bound to triumph.

It took the best part of two hours to negotiate Pissu Ghati and I must express my unbounded appreciation for the porters who carried me up that slope. I tried walking a few yards, but at that height (the climb rises from 9,000 to about 11,000 feet) my heart started beating wildly. And yet these people carried me up the slope with apparent ease and without a single, false step. Including the weight of the dandy, they were carrying well over 300 pounds !

There are many legends connected with the Amarnath yatra and the various places which one traverses during the pilgrimage. These legends are found in the "Amarkatha," the Sanskrit* account of the pilgrimage, its origin and significance. The Amarkatha is believed to have been related by Lord Shiva himself to his consort, Parvati, in the Amarnath cave and there is an interesting legend regarding Pissu Ghati (a corruption of Poushakhya-Parvat).

The Devas and the Demons were once making their way up the mountain to pay homage to Mahadeva. On the way they quarrelled as to who should go first and a battle ensued. The Devas got the worst of the exchanges and prayed desperately to Mahadeva for help. Mahadeva came to their rescue and destroyed the Demons. The huge rocks and boulders strewn on the slopes of Pissu Ghati represent the bodies of the Demons and it is said that by climbing the mountain one's sins are destroyed by Mahadeva in the same manner as he destroyed the Demons.

---

* The original book is printed here in *Sanskrit* with Hindi Translation.

Upon reaching the top of the mountain we were rewarded by a lovelv view. Far in the distance, Pahalgam nestles in the mountains. On all sides huge peaks thrust their hoary heads high into the air, while far below the Lidder—now a restless tape of silver—wirds its way down to the plains. I stopped here for fifteen minutes, taking photographs and chatting with some sadhus who were fellow pilgrims.

From here on, for about four miles, there is a smooth decline along which we travel at a fair pace. The scenery grows more spectacular and often I stop and gaze in rapture at the breath-taking sight. At one place opposite us on the right, a huge glacier rises to over 15,0C0 feet. From its gleaming snows a stream drops, a luminous silver band leaping thousands of feet down the sheer mountainside until it joins the Lidder at the bottom. On our side of the gorge, the mountains are covered with lush grass almost three quarters of the way up, ending in jagged rocks of a curious brick-red colour distinctly visible in their different layers. Above, a pair of magnificent eagles circle in majestic flight.

A little further on, I suddenly hear a most unusual, shrill whistle and see sitting on a rock a hundred yards away a small animal covered with reddish fur. I recognise it as a Marmot. I will see many more of these little creatures as I go on.

We are now journeying at a height of nearly 12 000 feet, and abruptly the trees vanish as we pass the tree-line. From here on there is only green grass and a variety of small, green shrub, but not a single bush or tree.

At last we come to another stiff climb, at the top of which we are suddenly face to face with the lovely, green lake of Sheshnag, one mile long and a quarter mile broad, surmounted by a mighty glacier. Soon the Sheshnag Huts come in sight and we pass them in order to reach our camping-ground across the stream. To cross this, we pass over a bridge of solid ice under which the stream flows. The "bridge" looks as if it has been carved out of a gigantic block of ivory. A few clouds have come up, but they are white, fluffy, friendly, clouds—so unlike the saturnine monsters that scowled and rumbled at us yesterday—and the sun shines, huge and friendly, in the deep sky.

Our camp has been pitched on a lovely meadow over-looking the lake. I make my way to the top of a shallow incline and sit on a rock from where I survey the breath-taking view.

Before me lies Sheshnag, its water a peculiar, milky-green colour. Behind it a huge glacier rises to the feet of three mighty peaks of snow and ice, which symbolise, as it were, the divine trinity of Brahma the Creator, Vishnu the Preserver and Mahadeva the Destroyer. To the right, a mass of rocky mountain rises straight out of the lake. Behind me the distant grey rocks are covered with freshly-fallen snow which, melting, comes down in a gushing stream culminating in a white waterfall.

The scene is both calming and inspiring. Its sedate beauty soothes the mind restless from the cares and tribulations, he worries and sorrows of life. Its lofty peaks standing out

श्री युवराज महोदय शेषनाग झील के तट पर।
प्रभात में झील और पर्वतशिखर शोभा से चमकते हैं।
पर्वतों का त्रिक गाढ भक्ति में लीन प्रतीत होता है।



Shri Yuvaraj Ji at Sheshnag Lake. In the dawn the lake and the mountains lay in a pale hush, the trinity of peaks immersed in deep meditation.

श्री अमरनाथ जी के मार्ग में शेषनाग झील।
बर्फ के तोदे गल कर झील में आ रहे हैं।



Sheshnag Lake in the way of Shri Amar Nath — Mighty glaciers of snow are melting and coming into the lake.

against the deep, blue sky raise one's thoughts above the mundane into the pure realms of the spirit One distinctly feels the presence of a Power greater, stronger and purer than one's own petty self. For a while I glimpse the lovely face of Nature in its pure undesecrated majesty. The torrent of time slackens, the problems and strifes of life pale into insignificance and I am lost in deep contemplation.

I cherish a desire in the recesses of my heart to one day build myself a small Ashrama in such surroundings where, with the body and mind made pure and free from the tentacles of desire and fear, ego and attachment, one can concentrate upon the unalloyed purity of Nature and thereby perhaps achieve spiritual illumination When I am able to fulfil my desire, I can think of no better spot than where I am now sitting overlooking this placid lake.

The legend* runs that at one time there lived a mighty demon among these mountains who, in the form of a terrifying whirlwind, brought fear and terror among the Devas. In distress they went to Shiva, but the Lord said that he had granted the demon the boon of immunity from destruction at his hands. He advised them to go to Vishnu. Then the Devas went to the bank of the Lake Sheshnag and prayed to Vishnu, singing songs to his glory. Pleased, Lord Vishnu arose from the lake, seated upon the back of the mighty serpent, the thousand-headed Sheshnag. "O King of Serpents", he commanded, "With your thousand mouths, destroy this demon." Thus commanded, Sheshnag

*Please refer Amarnath Mahatmya.

हिममण्डित शेषनाग की चोटियाँ,
भक्तिमग्न—ब्रह्मा, विष्णु, महेश ।



Sheshnag mountains covered with snow, like Brahma, Vishnu and Mahesh immersed in deep meditation.

fell upon the demon and destroyed him. From that day the lake and the mountain are known as Sheshnag.

With reluctance I dragged myself back to the camp for lunch. After a short rest I went to see how my fellow-pilgrims were faring. A group of about a dozen ash-besmeared *sadhus* had seated themselves on a small knoll near our camp and I went over and chatted with them. They are a curious race, these *sadhus*. Some are men of great spiritual attainments, but, alas, many have made it a profession to live upon the religious susceptibilities of people, particularly women.

Sheshnag lies 13,000 feet above sea-level, and at that altitude all of us felt rather breathless and oppressed. A brisk walk to the main Sheshnag camp, and then I returned and distributed warm clothing and rations to those pilgrims who genuinely needed them. By now it was evening, and we all gathered in a tent to listen to a Pandit who read to us from the "Amarkatha".* The reading was followed by a *kirtan*.

By the time we finished it was nine. The moon, almost full, hung luminously between the mountain peaks. I walked up the small incline to gain a view of the lake by moonlight. By day the lake has an air of mystery and haunting beauty, but by night this effect is greatly enhanced. Sheshnag lay calm and deep, the moonlight mirrored in half its surface. The other half lay in the dark shadow of the mountains rising behind it. They were bathed in mystic light. Time

*Please consult AMAR NATH MAHATMY.

stands still in this enchanted panorama, and one feels in harmony with the deeper currents of pure Existence.

So once again I reluctantly draw myself back to the camp, where a simple but satisfying dinner awaits us. Our diet, I may add, from the time we left Srinagar to the day we returned, was strictly vegetarian, as is customary on a *yatra*. After dinner, we retired to bed, though at that altitude sleep was difficult and disturbed.

I got up the next morning at five, struggling out from under the pile of blankets which had kept me warm during the night. To my surprise it was already fairly light and I could not resist the temptation to visit my favourite spot again. I had seen the lake by full daylight and, again, when it was lit by the rays of the moon. I now wanted to see it at dawn, the hour of enchantment. I walked to the top of the hill and was rewarded, as before, with a remarkable view.

This time, a fresh, delightful morning breeze played on my face and hands. The lake and mountains lay in a pale hush, the trinity of peaks immersed in deep meditation. I felt a great joy rise in my breast and could not refrain from singing aloud. First I sang Shankaracharya's six stanzas in Sanskrit, portraying the highest Advaita (Monistic) philosophy, and each ending with the words, "Chidananda Rupah, Shivoham, Shivoham"* (My form is Pure Bliss, I am Shiva, I am Shiva). Then I sang *bhajans* in those delightful morning *ragas*, *Bhairav* and *Todi*.

---

*Please refer the STOTRA SANGRAHA.

As I finished my last song, the first rays of the sun struck the top of the central peak with a shaft of gold. The peak blushed, as if with joy at feeling the warm caress of the sun. Slowly the sunlight embraced the three peaks and moved down the mountainside. Soon the golden orb itself peeped over the mountains in the east and a warm glow of well-being flowed over all.

I descended to the camp and bathed. It is considered highly auspicious to bathe in the Sheshnag lake, and several of the braver members of our party descended half a mile to the lake to do so. But I have to confess that I used the less orthodox though certainly more convenient method of having water carried up from the lake and having it warmed for my bath. After breakfast we all set off towards our next stage, Panchtarani, situated eight miles from Sheshnag.

The holy road to Amarnath has through the centuries been trodden by lakhs of pilgrims. I am overcome by a reverential awe when I reflect that numerous men of great spiritual stature have passed over the track along which my dandy is now swinging. Gaints, unknown and unsung, have passed this way, and along this self-same path the great Swami Vivekananda, back from his triumphant "conquest" of America travelled in 1898 to pay his homage to Amarnath. Swami Ramtirath, too, made the pilgrimage. Along this route, a thousand years earlier, Swami Shankaracharya, one of the most brilliant and profound intellects India has produced, is reputed to have also wound his way towards the shrine of the Lord Shankara.

Sheshnag, as I have said, has a altitude of 13,000 feet but there loomed before us another formidable climb, the Mahagunus mountain. For three miles we climbed slowly and breathlessly. The scenery around us was beautiful. To the left of us rose a huge mountain, while towards our right, hundreds of feet below, a noisy stream grew smaller and smaller. On the mountainside the grass, covered with thousands of delicate little buttercups, swept right up to the sky-line—a quivering carpet of yellow. Below, alon side the stream, were flat green spaces, across which the impudent marmots scampered, whistling in glee. All round, mighty glaciers and rocky peaks loomed into the morning sky.

Higher and higher rose the path, until at last we reached the top of the Mahagunus Pass, 15,000 feet above sea-level. Here we dismounted and took photographs and made movies of the magnificient panorama of glaciers surrounding us. Patches of snow lay around us, and wisps of white cloud floated by.

From here started a long five-mile descent to Panchtarani. The scenery was rugged, and the stern barren mountains possessed an impressive beauty. There are no trees at this height, and the only green is that of the grass which grows even at such high points. The bare portions of the mountains are of a powder-grey colour. In the distance, Amarnath rises 18,000 feet high It is in the sides of this mountain that the Holy Cave is situated.

On the descent we pick up speed and my dandy swings along briskly while I divide my time between surveying the

view and reading Paul Brunton's fascinating "Search in Secret India". We stop at several places to stretch our legs and take photographs. Fresh mountain streams flow past our feet to the river below. Some of them come from the snows melting hundreds of feet above, others issue surprisingly from dry ground. Apparently their courses have lain underground up to the point of their emergence into the sunlight. More than once I hear the shrill whistle of the marmots, but fail to locate any of the little brown beasts. I want to catch a pair to try and tame them as pets, but they are said to be difficult to catch as they always remain near their holes into which they dive indignantly if anyone approaches.

At last the Panchtarani plain comes into sight. Here, it is said, Lord Shiva was once performing the Tandava Nritya (the Cosmic Dance of Destruction). So filled was he by the ecstasy of his dancing that his massive locks became undone and five streams of the Ganga fell from them to the ground. These five streams were the Panchtarangini and they are held to be very sacred. Bathing in them is considered auspicious.

The Panchtarani plain stretches nearly a mile long and over a quarter-mile broad. Through the centre of it flows a stream which is joined by four others coming down the barren mountainside with its angular crags. To the east is a large glacier, the snow of which has been shaped, presumably by the winds, into curious crater-like formations

which I had not seen anywhere else. Through binoculars they look very much like the craters of the moon.

The weather today also remained perfect. Occasionally a small cloud would drift between the sun and ourselves, and then suddenly the temperature would drop steeply and we would begin to shiver. But almost immediately a friendly wind would blow the offending cloud away and we would once again be in the comforting wamrth of the sun.

After lunch and a short nap, I wandered off on an exploratory stroll around the camp. Invisible marmots shrieked at my approach but, search as I would, I could not locate a single one of the elusive little animals. I walked to the foot of a small waterfall on the mountain behind our camp. I was struck by the profusion of small wild flowers that grew everywhere. At one place, within a square yard of ground, I counted seven different types of flowers, all of different colours. Many rare herbs grow upon these uninhabited mountains. Some, I am told, are extremely valuable. There were also pretty stones lying about. Some of them were delicately veined, others sparkled in the sun.

In the evening we had the usual *kirtan*. Singing at those altitudes is an exhausting affair, and after a song one finds oneself breathless. After the kirtan we had dinner and retired to bed early, for the morrow would bring the culmination of our pilgrimage. We would reach the Holy Cave of Amarnath.

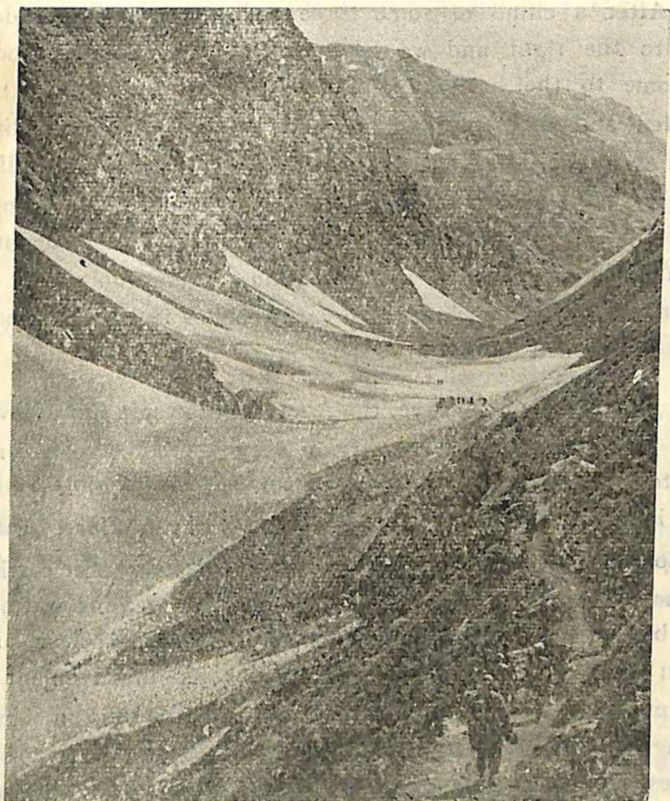
   

I was awakened at five in the morning by shouts of "Shree Amarnath Swami Ki Jai" outside my tent. Devout pilgrims were already on their way to the cave. It was so cold that I snuggled under my blankets for another hour before venturing out. All of us were ready by eight and set out for the cave with feelings of great expectation and excitement. As is the practice, I did not eat or drink anything until after the visit to the cave.

The path to the Holy Cave leads out of Panchtarani, going round the mountain at whose base our camp is pitched. For a few hundred yards the way lies along the stream. Then it curves away and ascends rapidly with very sharp and steep bends. Some of them are unnerving, particularly when the path narrows and the loose earth gives alarmingly under one's feet. Soon we are at a dizzy height and climbing still higher. At several points I just close my eyes and hope for the best as we negotiate the corkscrew-bends.

Higher and higher we climb, for about three miles. The mighty mountain of Amarnath rises in front of us. High on its grass-covered slopes, barely a few hundred feet below the rocky summit, goats and horses graze—black specks moving calmly upon the precarious mountainside. These animals belong to the Bakkarwals, those bearded nomads who in the winter come down to the plains but in summer move up to such grazing-grounds. Their tents are also pitched up there—a sight to make one dizzy. Man or animal making one false step would hurtle a sheer two thousand feet to a

वर्फीला यात्रापथ जिस के नीचे से अमरावती बह कर पञ्चतरणी में जा मिलती है।



For about half a mile we have to travel over solid ice.

pulpy doom, but habit and instinct do not fail them and they retain their foothold with ease.

After a climb of some three miles, there is a sudden turn to the right and we begin to descend rapidly. Soon we come to the bottom of a steep narrow ravine, about a hundred and fifty yards wide, precipitous with tall cliffs looming hundreds of feet to the skyline. For about half a mile we have to travel over solid ice. Finally the famous cave of Amarnath comes into sight, a huge cavity yawning in the side of the mountain. We go on almost to the end of the ravine where, fifty yards below the cave, a tent has been pitched for us.

To the left of the cave, the Amaravati stream flows down from the mountain. This is a very sacred stream and devotees are expected to bathe in it and smear their bodies with its mud (भस्म), before entering the cave. Here, again, I adopted the unorthodox course of getting the water carried in buckets to the tent, but this time I did not have it warmed but bathed with the ice-cold water. It was a clear and warm day, and the cold bath was not as inconvenient as one might expect it to be. At that altitude the sun shines strongly and one has the illusion that it looks bigger than it does lower down. We are all badly sunburnt. After the bath I emerge from the tent, clad only in a yellow dhoti, and climb up the steep path to the cave.

Margaret Noble, better known as Sister Nivedita, describes in her "Notes on Some Wanderings with Swami Viveka-

nanda", the Swami's visit to the sacred cave. "The place", she writes, "was vast, large enough to hold a Cathedral, and the great ice-Shiva, in a niche of deepest shadow, seemed as if throned on its own base." She records that Swami Vivekananda was so overwhelmed when he entered the cave that his whole frame shook and he almost swooned with emotion. "I have enjoyed it so much," the Swami said later, "I thought the ice-lingam was Shiva himself And there were no thievish Brahmans, no trade, nothing wrong. It was all worship. I never enjoyed any religious place so much." The Swami would afterwards tell of an overwhelming mystical experience which came to him in the cave. Shiva himself appeared before him and granted him the Boon of Amarnath—the Lord of Immortality—not to die until he himself should choose to throw off his mortal bonds. He would also talk of the poetry of the white ice-pillar and suggested that the cave had been discovered by a party of shepherds who, wandering far in search of their flocks, had one summer day entered the cave to find themselves before the unmelting ice, in the presence of the Lord Himself.

The cave is of truly colossal dimensions. Its outer mouth must measure almost forty yards across, and it is about seventy-five feet high and at least eighty feet deep along its downward slope into the heart of the mountain. Inside, an imposing ice formation rises about five feet and ends in a glistening cone, the famed representation of the Lord Shiva. To the right is a block of pure white ice, about six feet high and three feet broad, which represents Ganesha, while to the left is a smaller ice formation regarded as the symbol of

Shiva's consort, Parvati. These ice formations are believed to wax and wane along with the moon, reaching their climax on the full-moon-day and vanishing completely on moonless day. The cave is one of the most sacred places in all India. As I entered it, I suddenly had the curious feeling that I had been there before, and, certainly, the unusual atmosphere of the cave affects many people powerfully. I was overawed as I entered its hallowed precincts.

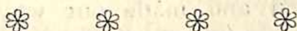
Before the ice-lingam of Shiva, my wife and I performed the traditional puja and made offerings of cash, cloth and dried fruit. Then, with folded hands, we all sang a hymn to Lord Shiva. We performed similar ceremonies before the ice images of Ganpati and Parvati, and made offerings to them.

The traditional method of distributing these offerings is interesting. No one stays permamently at the cave, and therefore, after the pilgrims have made their offerings, these are collected by the camp officer, a Government official, who accompanies the pilgrims. The offerings, both in cash and kind, are divided into three equal portions. One goes to the Mahant of the pilgrimage, who stays at Srinagar. A second portion goes to the Pandas (priests) of Mattan (Martand Tirth), a place of pilgrimage twenty miles short of Pahalgam. The third portion goes to a Muslim family of Mallicks, who also live near Pahalgam. Representatives of these three interests accompanied us to the cave to be sure that they were not deprived of their share of the offerings.

The puja over, we emerged from the cave into the bright sunlight. It had been chilly inside and I was shivering in my

thin dhoti. Outside the cave we saw the famous pair of rock pigeons which is reputed to remain here throughout the year, even during the winter months when not a blade of grass is to be seen. What they eat is a mystery. Legend* goes that the pigeons were two followers of Lord Shiva who disturbed him during his meditations. In anger Shiva turned them into pigeons and they live perpetually near him in the cave. It is curious that these birds have been seen for scores of years, much longer than the normal life span of a pigeon. Whether they have always been the same pigeons or, in some mysterious way, are succeeded by others when they die, it is not possible to say.

We descended to the tent where a freshly-cooked lunch awaited us, after which I lay down for a while. By now the cave was completely deserted and I walked up again. This time I got a very good view of the inside of the cave and the ice formations, which are truly remarkable.



IT is with reluctance that I leave the cave. Some indefinable attraction makes the parting a poignant one. The gleaming lingam of ice has a strange power of attraction and I draw myself away with difficulty.

We negotiated the return journey to Panchtarani at a brisk speed, and were back in camp by six. After the usual kirtan I retired to bed with a feeling of peace and satisfaction.

We leave Panchtarani early next morning as we are to reach Chandanwari in the evening and will have to do two laps instead of one. As the dandy swings along, I again

*Please refer Amarnath Mahatmya.

felt a strange pang, as if leaving behind some dearly-loved friend. I turn to get a last glimpse of Amarnath mountain and, in my mind, pay silent homage to the Lord of Amarnath.

We start the long, tedious five-mile climb to the top of the Mahagunus. On the way we pass, on our right, a place known as Hatyara Talava (The Tank of Death) where one year forty pilgrims met their death in an avalanche which their own hymns had started. That route is now banned as it is still hazardous.

Once we get to the top of the mountain the porters speed up and we are in Sheshnag by noon. At once I make my way to my favourite spot overlooking the lake dominated by the three lofty pinnacles of aged snow.

After lunch we set off again, as we are keen to get past the formidable Pissu Ghati before dark. As my dandy travelled along the path, five hundred feet above Sheshnag, I felt an irresistible desire to go down to the shore of the lake. So we stopped and made our way downhill. Half way down I suddenly heard the call of a marmot very close to me, and turning a corner I saw one standing on its hind legs just twenty feet away. We went down to the edge of the lake and drank of its ice-cold water. The lake is very deep, even at the edge of its bank.

We walked along the shore and came upon a rock on which an image of a seven-headed serpent, representing Sheshnag, was carved. Finally we made our way back to the path, after a laborious and dangerous climb uphill.

श्री अमरनाथ जी की जगत्प्रसिद्ध गुफा



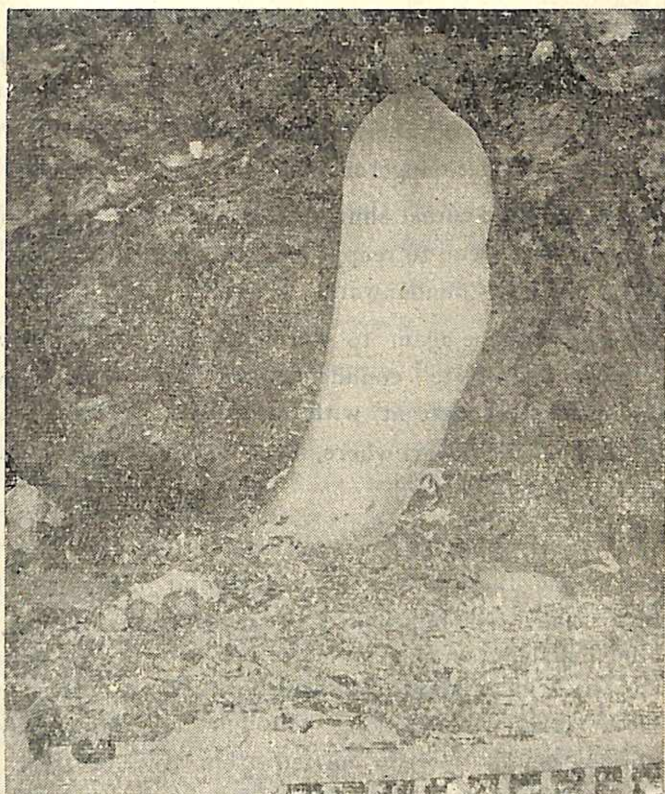
The famous cave of Shri Amarnath Ji—
a huge cavity yawning in the side of the mountain.

श्रीमती युवरानी यशोराज्यलक्ष्मी जी सहित श्रीमान युवराज कर्णसिंह जी पतली धोती पहने श्री अमरनाथ जी की पूजा कर रहे हैं। उनके निकट पंडित तथा कर्मचारी खड़े हैं।



Yuvraj Shri Karna Singh clad as a pilgrim and Yuvrani Shrimati Yashorajyalakshmi making their offerings before the sacred ice lingam.

जगत् प्रसिद्ध पर्वत-रससमुद्भूत शिवलिङ्ग ।



The famed ice formation in the cave, representing Lord Shiva, it is a glistening cane of ice, five feet high.

The weather, for the fourth day in succession, remained beautifully clear. Among our party was one, an incorrigible prophet of doom, who was always prophesying bad weather, landslides and other dire calamities. Fortunately for us all, however, the weather remained exceptionally good. I certainly would not have cherished having to negotiate Pissu Ghati and those other dangerous inclines in bad weather !

As soon as the corner shutting out the view of Sheshnag was turned, trees began to reappear and grew denser as we progressed towards Chandanwari.

At last we came again to Pissu Ghati but by now I had attained complete confidence in the porters, who negotiated the steep descent with ease. Just before sunset, we got into Chandanwari where, after kirtan and our dinner, we retired for the night.

The next morning, after distributing well-earned rewards among the porters, pony-men and others who had helped to make our pilgrimage the success that it was, we set off for Pahalgam on the last lap of our trip back to Srinagar. The Lidder, still retaining the green colour it derives from its mother lake, rushed along through its gorge. Lovely little birds, singing merrily, flitted from tree to tree. At one place a monkey sat upon a rock, watching us with sedate surprise.

News of my return must have travelled ahead of me, for in several places Gujjars had collected to greet me, their women singing *Pahari* songs of welcome. The Gujjars are a semi-nomadic tribe who keep large herds of buffaloes and

every winter travel down to the plains. Their songs have much in common with the lilting Dogra hill songs.

On the way I chatted with the porters. One old man, his face full of mellow though unlettered wisdom, gave me his simple philosophy of life. "*Sarkar,*" *he said,* "*Khuda helps those who are persevering. Difficulties and troubles come, but one must bear them with patience and faith in God. Take this pilgrimage. On the first day it rained heavily and there was much discomfort. If you had been disheartened and had turned back, the pilgrimage would have failed. But you had faith in God and pushed on. The result was that the pilgrimage was a great success.*"

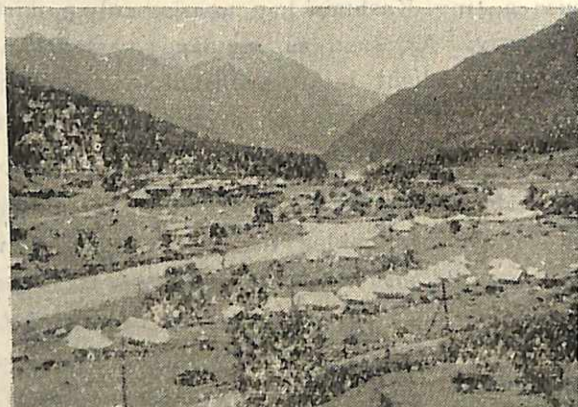
Soon we reached the village of Pahalgam. Outside the first house a tiny Kashmiri boy, wearing only a shirt, stood waiting eagerly. As soon as my dandy passed him, he ran screaming with delight into the arms of the foremost porter. It was his father. Their meeting made a heart-warming little incident.

In Pahalgam we made our way to the Club and sat upon a wooden terrace overlooking the swiftly flowing river. "*O Lidder,* I mused, "*I have seen your birthplace in the mighty three-peaked glacier. I have seen you gush down its snow-clad slopes into unfathomed Sheshnag, to emerge broader and more powerful. I have followed your twists and turns, your pools and rapids, down the narrow valley, and now you will gurgle on till at last you mingle with the slow-flowing waters of the broad Jhelnm.*

After lunch I pay a quick visit to two local temples, and then drive off to Srinagar. As the car bowls along between lines of poplars, the road flanked by smilling fields of maize and paddy, my thoughts return again and again to the Holy Cave. How remote, how impenetrable those lofty mountains seem, how hazardous the steep and narrow path. Yet once at the Cave, what peace and serenity descends upon one! Thus, I venture to hope, after I have crossed the steep mountains and deep gorges of life, a deep and eternal peace awaits me.

— : o : —

लिदर नदी तट पर पहलगाम पड़ाव ।



Pahalgam on the banks of the Liddar.

The Glory of Amarnath (हिन्दी भाषानुवाद)

वक्तव्य

यह निबन्ध तीन लेखों के रूप में सब से पहले "हिन्दुस्तान टाइम्स" के रविवासरीय संस्करणों में प्रकाशित हुआ था।

बहुत से मित्रों—जिन में (स्वर्गीय) श्रीदेवदासगान्धी, प्रबन्धसंपादक "हिन्दुस्तान टाइम्स"—ने मुझे यह सुझाव दिया, कि यह लेख पुस्तिका के रूप में प्रकाशित होने परमावश्यक हैं। उन्हों ने अनुभव किया कि ऐसे बहुत से सज्जन सारे देश में होंगे. जो कि प्रसिद्ध और ऋषि-मुनियों से सेवित श्री अमरनाथ जी की इस गुफा का परिचय प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हों।

शिव जी की यह पवित्र गुफा हिन्दू तीर्थों में यात्रा का एक प्रमुख स्थान है। कश्मीर पधारने वाले पर्यटकों के लिए तो यह पर्यटन का उत्तम आकर्षण स्थान है अतः मैंने कुछ परिचय देने वाली यह छोटी सी पुस्तक लिख कर अपना परम सौभाग्य माना है, जो कि सम्भवतः आने वाले धार्मिक-यात्रियों तथा पर्यटकों के लिए उपयोगी हो सकेगा।

जम्मू
अप्रेल १३, १९५४.

कर्णसिंह

१. प्रेरणा

'अमरनाथ' न मरने वाले भगवान्, यह शब्द मेरे लिए सदा ही एक विचित्र कल्पना का विषय बना रहा है। मैं सदैव इस पर लज्जा का अनुभव करता था, कि मेरे निवास के इतने निकटवर्ती यात्रा के इस पवित्र स्थान को अभी तक मैं नहीं देख पाया। जब कि भारत भर के दूरवर्ती कोने कोने से आ कर सहस्रों यात्री प्रतिवर्ष यह यात्रा करते हैं। इस प्रकार कई वर्षों से यह यात्रा करने की अभिलाषा कर रहा था और गत दो तीन वर्षों से यह अमूर्त्त अभिलाषा मेरे अन्तस्तल में घनीभूत होकर स्पष्ट रूप में परिणत हो गई।

परम्परागत यात्रा (तीर्थयात्रा) प्रतिवर्ष श्रावण में रक्षाबन्धन की पूर्णिमा के दिन गुफा तक पहुँचती है। यह दिन १९५३ (वि. २०१०) में २४ अगस्त (९ भाद्रपद) को था। तो भी मैं ने—जैसा कि बहुत लोग करते हैं - एक मास पूर्व ही यात्रा का निश्चय किया। तयारी कर चुकने के अनन्तर हम निश्चित रूप से २३ जुलाई १९५३ की प्रभात को श्रीनगर से पहलगाम के लिए चल पड़े। उस दिन मौसम अत्यधिक खराब था जिस ने हम सब को चिन्तित कर दिया। क्योंकि गुफा तक जाने का यह मार्ग उन ढालुवां तथा संकरी पहाड़ियों के बीच से हो कर जाता है जो कि वर्षा में अधिक फिसलनदार बन जाती हैं। तथापि दृढ़विश्वासयुक्त दर्शन करने की धारणा से हमने यात्रा का आरम्भ किया, यद्यपि निश्चित रूप में यह एक भारी कष्टों का आह्वान था।

श्री अमरनाथ जी की यह गुफा यात्री भक्तों को तेरह हजार फुट की ऊंचाई पर चढ़ने को आमन्त्रित करती है। यह स्थान पहलगाम से केवल २८ मील की दूरी पर है। कागज पर यद्यपि यह दूरी थोड़ी सी प्रतीत होती है किन्तु वस्तुतः यह बहुत दुस्तर मार्ग है।

२. पहलगाम से चन्दनवाड़ी

पहलगाम से आगे पहियों वाली सवारी नहीं जा सकती। पहाड़ी मार्ग पैदल या घोड़े पर पूरा किया जाता है, कई वर्ष से दुर्घटनाओं के तांतों ने मेरे शरीर में एक न्यूनता पैदा कर दी है जिस से यह संभव नहीं कि मैं बहुत दूर तक विशेषतः पहाड़ी मार्ग में—पैदल अथवा घोड़े पर चल सकूं। इस कारण मैं डांडी की सवारी में यात्रा करने के लिए विवश हो गया यद्यपि मैं इस प्रकार की सवारी पसन्द नहीं करता।

आनन्दप्रद समागमस्थान पहलगाम क्लब में भोजन के पश्चात् हम पहली पड़ाव चन्दनवाड़ी* के लिए चल पड़े जो कि पहलगाम से आठ मील की दूरी पर है। अब तक वर्षा—जो प्रभात ही में आरम्भ हो गई थी—तीव्र फुहार के रूप में स्थिर हो गई थी जिस से भीग कर पृथ्वी एक चौड़े चाकलेट के रूप में बदल रही थी। लिदर नदी का प्रवाह इस तंग घाटी में से होकर वेग से चलता हुआ सपाट गिरता है और चन्दनवाड़ी को जाने वाला मार्ग इसके दक्षिण तट के साथ २ चलता है। हम अपराह्न में लगभग तीन बजे चल पड़े, हमारी सहयात्री तीन स्त्रियां जिन में मेरी पत्नी भी थी, पैदल चलने का हठ करने लगीं यद्यपि घना तथा फ़िसलने वाला कीचड़ था। दृढ़ काश्मीरी भारिकों द्वारा उठाई हुई डांडी में मैं बैठ गया और शेष सहयात्री अपनी इच्छानुसार पैदल अथवा घोड़े पर यात्रा पूर्ण करने लगे।

सौभाग्यवश वर्षा इतनी तेज़ न थी जो कि उन मनोरम दृश्यों को ओझल कर सकती जो कि चलते चलते हमारे निकट आते और

---

*इसे संस्कृत में स्थाणवाश्रम कहते हैं जिस का अपभ्रंश 'थनीन' आज भी इस का प्रसिद्ध नाम है।

दृष्टिगोचर होते। हमारी दाहिनी ओर सौ गज़ नीचे बहने वाली नदी की मधुर ध्वनि सान्त्वना का गुण रखती है। घाटी के दोनों ओर छोर घने जंगलों से भरपूर हैं। जब हम ने दो मील का तंग और विषम मार्ग पार किया तो लिदर के प्रवाह का शब्द ऊंचा हो गया और हम अचानक ही कुछ गज़ लिदर की धारा के बीच में चले गए।

लिदर का जल अपने ऊपर ही उछल कूद मचाता चलता है जैसे कि इसे किसी स्थानविशेष में पहुंचने की चिन्ता से बड़ी हड़बड़ाहट लगी हुई है। यहां पर घाटी कुछ विस्तृत हो जाती है और सब ओर पर्वतचोटियां हरियावल से भरी हैं। शिखरों तक फैल रही घनी घास, ऊंचे देवदार तथा भूर्जपत्र के वृक्ष, झाड़ियों तथा गुल्मों के विविध प्रकार—सब मिल कर अपनी अपनी हरियावल की विशेष शोभा को बढ़ाते हैं जिससे सारा दृश्य आकाश की ओर मुड़ा हुआ शतरञ्ज का हरा तख्ता जैसा प्रतीत होता है। अपने परिवार से पृथक् हो कर कुछ छितरे हुए बादल सहसा पहाड़ियों के नीचे लपके, जो कि उन ढालुआं टीलों में विलीन हो गए।

ज्यों ही हम आगे बढ़े, मैं ने अपना सिर पीछे रखा और आंखें मूंद लीं। डांडी के लचकदार हिचकोले और निरन्तर प्रवाह की ध्वनि अपना अद्भुत मनोमोहक प्रभाव बनाने के लिए जुड़ गए। मैं ने अपना ध्यान भगवान् शिव की महिमामयी मूर्ति की ओर किया जैसे कि वह स्वयं सदा शान्त और अगम्य समाधि में स्थिर होकर गाढ़ भक्ति में तल्लीन बैठे हों। मैं महादेव की यात्रा का पथिक हूँ अतः उनकी स्तुति में गाए गए कई स्तोत्रों में से एक स्तोत्र को गुनगुनाने लगा।

३. चन्दनवाड़ी

चार घण्टे की थका देने वाली यात्रा के पश्चात् (थका देने वाली—मैं कह सकता हूँ मेरे लिए नहीं, क्योंकि मेरा तो सुखपूर्वक परिवहन हो रहा था—उन भारिकों तथा पैदल चलने वालों के लिए) हम चन्दनवाड़ी पहुंच गए। वहां पर हमारे आवास का प्रबन्ध पहले ही किया जा चुका था और गर्म चाय के एक प्याले ने हमारी शक्ति को पुनर्नव कर दिया जो कि मौसम की खराबी से कुछ मन्द पड़ गई थी।

भोजन से पूर्व हम सब भोजन वाले तम्बू में सम्मिलित हुए और दूसरे साथी यात्रियों के साथ मिल कर लगभग एक घण्टा तक भजन गाते रहे। मैं इस प्रकार के कीर्तनों को अत्यधिक पसन्द करता हूं और यात्रा के दिनों में हम नित्य नियमित रूप से सायङ्काल इस प्रकार के कीर्तन करते रहे।

कीर्तन के उपरान्त हम ने पूर्णत: शुद्ध भोजन किया, जिस के बाद हम सब आनन्द से अपने २ बिस्तर पर जम गए। लेटने से पूर्व मैं ने घबरा कर ध्यान दिया तो आकाश अधिक घने मेघों से आच्छन्न था।

ज्यों ही दूसरे दिन प्रातः सात बजे के लगभग जागा तो मैं बिस्तर से एक दम कूद पड़ा और बाहर आते ही तम्बू का लटकता पर्दा उठा दिया। तब चमचमाती धूप अन्दर आने लगी और मेरी दृष्टि निर्मल नील नभ की ओर गई। बादल के सभी चिह्न हट गए थे और मैं चन्दनबाड़ी के शोभातिशय से आकृष्ट हुआ जिस से कि पहले दिन वञ्चित ही रह गया था। पड़ाव के लिए चन्दनवाड़ी एक छोटा सा मैदान है जोकि क्षेत्रफल में लगभग एक वर्गमील है। (पर्वतमध्य में) स्थित यह एक वृहदाकार कटोरे के तल के समान है,

जिस के किनारों पर घने जंगलों भरे पर्वतशिखर हैं जो कि आकाश से होड़ ले रहे प्रतीत होते हैं। प्रभात की नूतन आतप में यह स्थान अत्यधिक मनोरम आभा से युक्त था।

४. चन्दनवाड़ी से शेषनाग (वावजन)

प्रातराश के अनन्तर आठ बजे हम अगली पड़ाव शेषनाग (वावजन) के लिए चल पड़े। यह स्थान चन्दनवाड़ी से सात मील दूर है परन्तु मार्ग बहुत ढालुआं और बिखड़ा है। लगभग आध मील तक मार्ग लिदर नदी के किनारे किनारे चलता है। तब दो मील लम्बी खड़ी चढ़ाई चढ़ने को मिलती है जिसे पिस्सू घाटी कहते हैं यह घाटी नदी के धरातल से दो हज़ार फुट ऊंची उठ जाती है। यह मार्ग तंग है और संकरे मोड़ जल्दी जल्दी आते हैं। खराब मौसम होने पर यह चढ़ाई और भी फिसलने वाली और भयावह हो जाती है। आज, यथाकथञ्चित् मौसम ठीक था। निःसन्देह यह चढ़ाई थका देने वाली है।

तीर्थयात्रा प्रतीक है—जैसा कि इसे समझा जाता था—आत्मा की उस लम्बी यात्रा की, जो कि इस के चरमलक्ष्य परमात्मा की ओर प्रगति करावे। भारत भर के प्रायः सभी प्रसिद्ध तथा मुख्य तीर्थ-स्थान भक्त-यात्रियों का भयानक तथा कठिन मार्ग द्वारा ही ले जाते हैं जिन से उनकी श्रद्धा और भक्ति की पग-पग पर परीक्षा होती जाती है। यात्री के लिए ऐसी यात्रा पूर्ण कर सकना तभी संभव है जब वह अपने लक्ष्य तक पहुंचने के लिए कटिबद्ध (दृढ़निश्चय) है। यदि यात्री अपने आप में श्रद्धा, उत्साह और वीरता की हिलोर लेता हुआ ईश्वर में विश्वास रख कर आगे बढ़ता है तो वह निश्चित रूप में सफलता प्राप्त करता है।

इस पिस्सू घाटी को पार करने में दो घण्टे का अच्छा खासा समय लगा और मुझे उन भारिकों की अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए जो कि मुझे उस चढ़ाई पर ले गए। मैं ने कुछ गज तक स्वयं पैदल चलना चाहा परन्तु उस चढ़ाई पर (जो कि सहसा नौ हज़ार फुट से ग्यारह हज़ार फुट तक ऊंची चली जाती है) मेरा हृदय ज़ोरों से धड़कने लगा। तो भी यह भारिक मुझे संभाल कर बिना पैर आदि फिसले बड़ी सुगमता से ऊपर ले गए। यह भारिक डाण्डी का तौल मिला कर तीन सौ पौण्ड से अधिक भार का वहन कर रहे थे!

अमरनाथ यात्रा तथा इस के मार्ग में आने वाले स्थानों के सम्बन्ध में बहुत सी दन्तकथाएं प्रचलित हैं। यह दन्तकथाएं अमरकथा* (अमरनाथमाहात्म्य) नाम्मक पुस्तक में संगृहीत मिलती हैं। यह पुस्तक इस तीर्थ यात्रा के सम्बन्ध में है और इस तीर्थ की उत्पत्ति तथा प्रभाव को बताती है। जो कि संस्कृत भाषा में लिखी गई है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अमरकथा साक्षात् शिव जी के द्वारा अपनी धर्मपत्नी पार्वती के प्रति अमरनाथ गुफा में कही गई। अमरकथा में पिस्सू घाटी† (पौषाख्य पर्वत) के विषय में भी एक आनन्ददायक दन्तकथा है—

"एक बार देवता तथा असुर महादेव जी के दर्शन करने के लिए पर्वत तक जाने को मार्ग बना रहे थे। मार्ग में ही उन में झगड़ा हो गया कि कौन पहले जावे। इसी बात पर उन में परस्पर युद्ध होने

---

* यह पुस्तक हिन्दी अनुवाद सहित साथ ही छपी है। पाठक कृपा कर भाग २. में देखें।

† मूल पुस्तक में पेषाख्य नाम है, संभवतः खुरदरी पहाड़ी होने से ऐसा नाम रखा गया है।

लग गया। देवता युद्ध में हारने लगे। हारते-हारते उन्होंने महादेव जी से सहायता के लिए हार्दिक प्रार्थना की। महादेव जी उनकी रक्षा के लिए आए और उन्होंने आ कर राक्षसों को नष्ट कर दिया। पिस्सू घाटी में पड़ी हुई बड़ी-बड़ी चट्टानें और भारी पत्थर उन असुर-शरीरों के अवशेष (अस्थिकङ्काल) माने जाते हैं और यह कहा जाता है कि इस पहाड़ को पार कर जाने वाले व्यक्ति के पापों को महादेव जी उसी प्रकार नष्ट कर देते हैं जिस प्रकार उन्होंने उन राक्षसों को नष्ट कर दिया था।

पर्वतशिखर पर पहुंचने पर हमें सुन्दर दृश्य रूपी पुरस्कार प्राप्त हुआ। दूर-लम्बी दूरी पर पहाड़ों में पहलगाम के आवास, चारों ओर दीर्घकाय पर्वत अपने शिखरों को आकाश में दूर ऊंचाई पर पहुंचा रहे हैं, जब कि नीचे की ओर बहुत नीचे लिदर—जो कि अब एक अन्तहीन चांदी की तार सी—मैदानों की ओर अपना चक्करदार मार्ग बना रही है। मैं यहां पर पन्द्रह मिनट रुक गया। इतने समय में मैं ने वहां पर दृश्यों के कुछ चित्र लिये और अपने सहयात्री साधुओं से विनोदपूर्ण वार्तालाप किया।

यहां से आगे, लगभग चार मील तक, एक साफ़ उतराई है जिस पर हम समान गति से चले। यह दृश्य अधिकाधिक विचित्र होता जाता है। मैं इस मार्ग में प्रायः सांस लेने के लिए सुन्दर स्थानों पर रुकता और इन्हें अत्यन्त हर्ष से देखता। एक स्थान पर, हमारे ठीक सामने, दाहिनी ओर बर्फ की एक विशाल चट्टान पन्द्रह हज़ार फुट से अधिक ऊंची चली जाती है। इस से पिघल कर बहने वाली बर्फ से एक नदी बह निकलती है। जो चमकीली चांदी की डली के समान हज़ारों फुट नीचे सपाट गिरती है और आगे चल कर लिदर में मिल जाती है। हमारे ... के ... यारे में पर्वत ती

चौथाई भाग में घास से हरे भरे हैं। और उन पर अन्त में टेढ़ी-मेढ़ी चट्टानें हैं जिन में विभिन्न रंगों के लाल आदि पत्थर रंग-बिरंगी परतों में दिखाई देते हैं। इन पर्वतों पर अद्भुत उडान लेने वाला चमकदार चीलों का एक जोड़ा उड़ान में अद्भुत घेरा बनाते हुए मंडरा रहा था।

कुछ ही दूर आगे, मैंने एक असाधारण कूक सुनी और देखा कि लगभग सौ गज़ की दूरी पर एक चट्टान पर छोटा सा जीव लाल सी फर में ढका है। मैंने इसे एक प्रकार की गिलहरी (Marmot) समझा। आगे चलते-चलते मैं इन जीवों को अधिक संख्या में पाता हूँ। हम अब लगभग बारह हज़ार फुट की ऊंचाई पर चल रहे हैं। यहां पर वृक्ष पंक्ति को पार करते ही वृक्ष अदृश्य हो जाते हैं और आगे गुफा तक केवल हरा हरा घास तथा विभिन्न प्रकार की झाड़ियां ही हैं वृक्ष या पौधा बिल्कुल नहीं है।

५. शेषनाग

अन्त में हम एक और कड़ी चढ़ाई पर आ गए, जिस के शिखर पर पहुंच कर हम अकस्मात् हरी सी शेषनाग की झील के सामने हो गए। जो कि एक मील लम्बी और चौथाई मील चौड़ी है। जिस के उद्गमस्थान में हिम के बहुत भारी तोदे पड़े रहते हैं। शीघ्र ही शेषनाग के पास बसी हुई झोंपड़ियों पर हमारी दृष्टि पड़ी जिनके निकट से हम अपने आवास के मैदान में जाते हुए गुजरे, जो कि प्रवाह के तट पर था। इस मार्ग को पूरा करने के लिए हम जमी हुई बर्फ के एक पुल पर से गए जिस के नीचे जलप्रवाह चल रहा था यह पुल ऐसा प्रतीत होता है, जैसे कि अभ्रक की बड़ी राशि को एकत्र कर बनाया गया हो। यहां आकाश पर कुछ बादल घिर आए, यह सफेद हैं, थोथे हैं, अतः मित्ररूप हैं। यह उस जड़प्रकृति दानव की भान्ति भयावह न थे जो

कि पिछले दिन हम पर गड़गड़ाए थे। इस समय सूर्य भी अपने मित्रतापूर्ण प्रकाश से चमक रहा था।

हमारा आवास एक सुन्दर हरे मैदान में झील के दृश्य पर बनाया गया था। मैं ने छिछले जल वाले भाग में तटवर्ती एक चट्टान पर बैठने के लिए स्थान बनाया और बैठ गया। जहां से कि मैं अतिनिकट और श्वासगोचर दृश्य को देख पाता।

मेरे सामने शेषनाग (झील) है। इस का जल विचित्रतापूर्ण दूधिए हरे रंग का है। इसकी पिछली ओर जमे हुए पानी से आरम्भ हो कर ऊपर की हिम तक तीन बड़े भारी शिखरों वाला एक बड़ा सा पहाड़ है—जो कि ब्रह्मा=जगत् की सृष्टि करने वाले, विष्णु=जगत् का पालन करने वाले और शिव=जगत् का संहार करने वाले (देव) की दिव्य त्रिमूर्ति का प्रतीक प्रतीत होता है। इसकी दक्षिण दिशा में पथरीले पहाड़ों का वर्ग सा सीधे ऊपर को उठ रहा है, मेरी पिछली ओर कई प्रकार की भूरे रंग की चट्टानें ताज़ा पड़ी हुई हिम से ढकी हुई हैं। जो कि (बर्फ) गल कर वेग से बहने वाला शुभ्र जल-प्रपात बन कर एक तीव्रगति प्रवाह के रूप में परिणत होती है।

यह दृश्य शान्ति तथा स्फूर्तिदायक है। इसका शान्त गम्भीर सौन्दर्य मन को चिन्ता तथा क्लेश से मुक्त कर जीवन की विडम्बनाओं तथा वाधाओं को दूर कर देता है। इसके उन्नत शिखर जोकि महान् नीले आकाश को मोर्चा बांधे चीर रहे हैं, प्रत्येक दर्शक के मनोभावों को इह-लोक की क्षुद्र-वासनाओं से हटा कर आत्मा की शुद्ध विभूति तक ऊंचा उठाते हैं। दर्शक अवश्य ही अनुभव करने लग जाता है, कि उसकी क्षुद्र जीवात्मा से बढ़ कर एक ऐसी महाशक्ति का अस्तित्व अवश्य है, जिसे सर्वशक्तिमान् सर्वभाव-विशुद्ध तथा सर्वनिधिनिधान कहा जा सकता है। कुछ क्षणों तक एक-टक हो

कर मैं प्रकृति के शुद्ध पवित्र गौरव को निहारता रहा। समय अपनी गति से कम होता जा रहा है, जीवन की उलझनें तथा क्षुद्र भावनाएं जीवन को तुच्छता में परिवर्तित कर रही हैं, मैं इसी गहन विचारधारा में मग्न होकर मनन करता रहा।

अपने मानसिक विश्राम-काल में मैं इस अभिलाषा की कल्पना करता हूँ कि एक दिन ऐसे सुन्दर स्थान पर एक छोटा सा आश्रम बनाऊंगा, जहां पर शरीर के साथ ही मन भी पवित्र हो तथा उसे अभिलाषा और भय के स्पर्श और ममता के मोह से रहित बनाया जा सके, और प्रकृति की अनिन्द्य वन्दनीय पवित्रता पर अपना ध्यान जमाया जा सके, जिससे अन्त में संभवतः आध्यात्मिक प्रकाश प्राप्त किया जा सके। जब मैं अपनी अभिलाषा को पूर्ण करने की कल्पना करता हूँ, तो मैं इस सुन्दर झील के किनारे से अधिक उत्तम स्थान को नहीं खोज पाता।

एक दन्तकथा* प्रसिद्ध है—कि एक समय यहां पर इन चट्टानों के बीच में एक बहुत बड़ा दैत्य रहा करता था, जिस ने चक्करदार भयानक तूफानों के रूप में देवताओं में भय तथा आतङ्क जमा दिया था। आतङ्कित दशा में देवता लोग इकट्ठे होकर शिव जी की शरण में गए, परन्तु शिव जी ने उत्तर दिया कि मैं ने उस दैत्य को-मेरे हाथों से मृत्यु न होने का-वरदान दिया है। अतः आप श्री विष्णु जी के पास जावें, इसके अनन्तर देवगण शेषनाग झील के किनारे गए और विष्णु जी को प्रसन्न करने के लिए उन की स्तुति में स्तोत्र गाने लगे। श्री भगवान् विष्णु प्रसन्न हो कर, सहस्रफण वाले (प्रसिद्ध) शक्तिशाली सर्पराज शेषनाग की पीठ पर बैठे हुए झील से बाहर

---

*. मूलकथा के लिए श्रीमद् अमरनाथ महात्म्य देखें।

आए और आदेश देने लगे—"हे सर्पराज, अपनी सहस्रफणों से इस दैत्य का नाश कर दो।" इस प्रकार आदेश पा कर शेषनाग जी इस दैत्य पर कूद पड़े और उन्होंने उसे मार डाला। उसी दिन से यह झील तथा पर्वत शेषनाग के नाम से प्रसिद्ध हैं।

इस मनोरम दृश्य को छोड़ने की इच्छा न होने पर भी मैं ने विवश हो कर अपने आप को कैम्प की ओर भोजन के लिए मोड़ा। भोजन के उपरान्त कुछ थोड़ा विश्राम कर के मैं अपने साथी यात्रियों को देखने गया, कि वह किस स्थिति में हैं? लगभग एक दर्जन भस्म रमाए हुए साधुओं का टोला एक छोटे से टीले पर हमारे कैम्प के पास ही ठहरा था, मैं वहां जा कर उन से प्रेम पूर्ण कुशल-मङ्गल पूछने लगा। यह साधु जाति भी विचित्र है। इन में कुछ आध्यात्मिक दौड़ में बहुत पहुँचे हुए हैं, परन्तु आश्चर्य है कि बहुतों ने तो इस (साधुपने) को अपनी जीविका का साधन मात्र ही बनाया है, जो कि जनता की धर्म भावना पर ही आश्रित है, जिस भावना को स्त्रियों में बहुत अधिक पाया जाता है।

शेषनाग समुद्रतल से १३ हज़ार फुट की ऊंचाई पर है और यह ऊंचाई हम सब ने ही जीवन के लिए कठिन और दबाव डालने वाली अनुभव की। थोड़ा घूमने के अनन्तर हम शेषनाग कैम्प की ओर तीव्रगति से लौट पड़े और जिन यात्रियों को हमने आवश्यकता में पाया, उन्हें गरम कपड़े और अन्न बांटा। अब सायंकाल हो चुका था, हम सब एक पण्डित से 'अमर-कथा' की कथा सुनने के लिए तम्बू में एकत्र हुए। कथा के आरम्भ में कीर्तन किया गया।

कथा समाप्त होते नौ बज गए थे, चांद अपने पूर्ण-रूप में प्रकाश देते हुए पर्वतशिखरों के मध्य में विराज रहा था। मैं चन्द्रिका से प्रकाशित झील का दृश्य देखने के निमित्त उसके साथ की पहाड़ी

के छोटे झुकाव पर टहलने लगा। दिन में झील यदि एक रहस्यपूर्ण वातावरण लिए हुए अद्भुत सुन्दरता को उपस्थित करती है, तो रात में यह प्रभाव और अधिक हो जाता है। शेषनाग शान्त और गम्भीर रहता है, चन्द्रिका इसके आधे भाग को प्रकाशित कर देती है, शेष आधा भाग इस की दूसरी ओर से उठने वाले पर्वतशिखरों की ओट में अन्धकारमय ही रह जाता है। वह भाग रहस्यमय प्रकाश में ही स्नान कर रहा था। समय इस विश्वमोहक दृश्य में चुप्पी साधे रहता है और दर्शक उस शुद्धसत्ता के अद्भुत प्रभाव में शान्ति का अनुभव करता है।

इस प्रकार पुनः एक बार मैं ने अनिच्छा से अपने आप को कैम्प की ओर मोड़ा जहां एक सादा परन्तु सन्तोषप्रद भोजन हमारे लिए प्रस्तुत था। हमारा भोजन—मैं वर्णन कर दूं—श्रीनगर से चलने से लेकर पुनः श्रीनगर लौट आने तक पूर्ण रूप में शाकाहारी था, जैसा कि किसी भी तीर्थयात्रा में प्रचलित है। भोजन के अनन्तर हम बिस्तर पर आराम करने लग गए—यद्यपि उस ऊंचाई पर सोना कठिन और बाधापूर्ण था।

दूसरे दिन प्रातः पांच बजे मैं जागा। मैं ने रज़ाइयों की उस तह को परे हटा दिया, जिस ने मुझे रात भर गर्म रखा था। मेरी उत्सुकता का कारण इस समय का स्पष्ट प्रकाश था और इसमें मैं पुनः प्रिय दृश्य को देखने की अपनी उत्कट अभिलाषा को रोक न सका। मैं झील को दिन के पूर्ण प्रकाश में और पुनः रात में—जब कि यह चन्द्रकिरणों से प्रकाशित हो रही थी—भी देख चुका हूँ। अब मैं ने इसे प्रभात में भी देखना चाहा, जो कि इन्द्रजाल के समान मोहक-समय है। मैं ने पहाड़ी के शिखर पर चलना प्रारम्भ किया और मुझे पहले की भांति ही अभिनन्दनीय दृश्य पुरस्कार के रूप में मिला।

इस बार एक नूतन, हर्षप्रद प्रातः-समीरण मेरे मुंह तथा हाथों के साथ अठखेलियां करने लगा। झील तथा पहाड़ियां सुन्दर शान्ति का अवलम्ब लिए थीं, पर्वतशिखरों का त्रिक गाढ़भक्ति में लीन प्रतीत हो रहा था। मैं ने अपने हृदय में उठते हुए असीम आनन्द का अनुभव किया और मैं अपनी ऊंचा गाने की अभिलाषा को संवरण नहीं कर सका। पहले मैं ने *शङ्कराचार्य जी के छः पद्य संस्कृत में गाए, जो कि अद्वैतदर्शन के उच्च भावों को अभिव्यक्त करते हैं और जो सभी पद्य "चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्" वाक्य से समाप्त होते हैं। जिसका अर्थ है कि "मैं चित्स्वरूप और आनन्द-स्वरूप शिव हूँ"। इस के अनन्तर मैं ने भैरव और टोडी प्रभाती रागों में आनन्दप्रद भजन गाए।

ज्यों ही मैं ने अन्तिम भजन समाप्त किया, त्यों ही सूर्य की प्रथम किरणें त्रिक के मध्यम शिखर पर सुनहली तारों के समान आ पड़ीं। शिखर-त्रिक चमक पड़ा, जैसे कि वह सूर्य के उष्ण आलिङ्गन के अनुभव से उल्लसित हो रहा हो। धीरे धीरे सूर्य का प्रकाश तीनों शिखरों पर व्याप्त हो गया और पहाड़ियों की ओर नीचे को फैलने लगा। शीघ्र ही वह स्वर्णिम प्रभामण्डल पर्वतों पर पूर्व की दिशा में फैल गया और एक उष्ण-लालिमा सब को चेतनता प्रदान करती हुई वह निकली।

मैं अपने आवास की ओर आया और स्नान-सन्ध्या आदि से निवृत्त हुआ। शेषनाग झील में स्नान करना बड़ा ही महत्त्व-पूर्ण माना जाता है, हमारे दल के कई उत्साही सज्जन आध मील तक नीचे उतर कर झील में स्नान करने के लिए गए। परन्तु मुझे यह

---

*साथ में छपे स्तोत्रसंग्रह से भक्तजन इन्हें पढ़ सकते हैं और कीर्तन का लाभ उठा सकते हैं।

स्वीकार करना पड़ता है कि मैं रूढ़िवादी बहुत कम हूं—अतः मैं ने झील से जल मंगवाया और उसे गर्म करा के अधिक सुगम विधि से स्नान किया। प्रातराश के अनन्तर हम सभी अपने अगले पड़ाव पंचतरणी के लिए चल पड़े जो कि शेषनाग से आठ मील की दूरी पर है।

श्री अमरनाथ जी का पवित्र मार्ग शताब्दियों से लाखों यात्रियों के द्वारा यात्रा किया गया है। इस भाव से मैं परम्परागत आदर से नतमस्तक हो जाता हूं, जब कभी इस ओर अपना ध्यान आकर्षित करता हूं। आज जिस मार्ग पर मेरी डाण्डी हिचकोले खाती चल रही है इस मार्ग पर असंख्य आध्यात्मिक महत्ता रखने वाले महापुरुष भी चल चुके हैं। आज तक न जाने इस मार्ग पर कितने अनजाने तथा अगणित महापुरुष यात्रा कर चुके हैं। और इसी पवित्र मार्ग से तो अमेरिका की अपनी ऐतेहासिक विजय के पश्चात् श्री स्वामी विवेकानन्द जी भी १८९८ ईस्वी में श्री अमरनाथ जी के दर्शन के लिए आए थे। श्री स्वामी रामतीर्थ जी ने भी यह यात्रा की है। इसी मार्ग से आज से सहस्र वर्ष पूर्व श्री स्वामी शङ्कराचार्य भी—जो कि भारत के प्रसिद्ध साहसी बुद्धिमान् दार्शनिक माने जाते हैं—आए थे, कहा जाता है, कि उन्हें श्री अमरनाथ यात्रा में कोई चोट भी आई थी।

९. शेषनाग से पञ्चतरणी

शेषनाग—जैसा कि मैं ने कहा है—तेरह हज़ार फुट की ऊंचाई पर है, परन्तु उसके आगे भी एक और घोर चढ़ाई हमारे सामने दिखाई पड़ी, जो कि *महागुनुस (के शिखर पर जाने के लिए चढ़नी पड़ती) है। इस पर तीन मील तक हम विना सांस लिए

* महाङ्कुश या महागुण शब्द से बना प्रतीत होता है।

धीरे धीरे चढ़ते गए। हमारे चारों ओर दृश्य अत्यधिक मनोरम थे। हमारी बाईं ओर एक महाकाय पर्वत खड़ा है जबकि हमारी दक्षिण की ओर सैंकड़ों फुट नीचे धीरे-धीरे गुनगुनाती हुई एक नदी छोटी से छोटी होती जा रही है। पर्वत की दिशा में सहस्रों मक्खनी रंग के फूलों से भरा स्पन्दनशील भूरा घास— भरी दरी की भांति— दक्षिण को ओर आकाश तक बढ़ता चला गया है। नीचे नदी की ओर हरे भरे चौड़े मैदान हैं, जहां पर निर्भय गिलहरियां (Marmots) आनन्दमय कूक भरती हुई इधर उधर घूम रही थीं। सभी ओर बर्फ के बड़े २ तोदे और पथरीली चोटियां प्रभात की प्रभा में भासित हो रहे थे।

मार्ग क्रमशः ऊंचा उठता गया और यह ऊंचाई हमें महागुनुस शिखर के मार्ग तक चलनी पड़ी, जो कि समुद्रतल से पन्द्रह सहस्र फुट तक ऊंची उठ गई है। यहां पर हम अपनी सवारियों से उतर पड़े और हमने अपने चारों ओर के बर्फीले पर्वत-शिखरों के चित्र लिए। हमारे सब ओर हिमखण्ड पड़े थे और सफेद बादलों के दल हमारे इधर उधर मंडराते रहे।

इस स्थान से पञ्चतरणी तक पांच मील की लम्बी उतराई थी। दृश्य बहुत ही रूखे थे और पूर्णतः बंजर पहाड़ियां एक प्रभावपूर्ण *सौन्दर्य लिए थीं। ऊंचाई पर वृक्ष बिल्कुल नहीं हैं और हरियाली केवल मात्र इतनी ही है जितनी कि इस ऊंचाई पर उत्पन्न होने वाले घास से सम्भव है। शिखरों के नंगे भाग धूल भरे भूरे रंग के हैं। दूर पर श्री अमरनाथ जी का शिखर अठारह हज़ार फुट की ऊंचाई तक उठ गया है। इन्हीं पर्वतों के मध्य में गुफा स्थित है। उतराई में हम तेज़ चलने लगे और मेरी डांडी तीव्रता

---

* रूखेपन में भी विशेष सुन्दरता है।

से हिचकोले लेने लगी । मैं ने यह समय दृश्यों को निहारते और श्री पाल ब्रुण्टन की लिखी Search In Secret India पुस्तक पढ़ते हुए बिताया । हम कई स्थानों पर अपनी टांगें सीधी करने तथा दृश्यों के चित्र लेने के लिए रुके । नीचे की नदी में जाने वाले सद्यः-उद्गत पर्वतीय प्रवाह हमारे पैरों के पास से जा रहे थे उन में से कई एक प्रवाह ऊपर सैंकड़ों फुट से गली हुई हिम से बन कर आ रहे थे । कुछ सूखी भूमि से आश्चर्यरूप में उद्गत हो रहे थे । व्यक्त रूप में उनके उद्गमस्रोत धरातल में छिपे थे. जब वह बाहर प्रकाश में प्रकट होते तभी दिखाई देते थे । मैं ने बहुत बार उन गिलहरियों की कूक सुनी परन्तु उस छोटे से भूरे जन्तु को मैं काबू कर सकने में असमर्थ रहा । मैं इसे पालतू बनाने के लिए इन गिलहरियों का एक जोड़ा पकड़ना चाहता था । परन्तु लोगों ने बताया कि इनका पकड़ना बहुत कठिन है, क्योंकि वे सदैव अपने बिलों के निकट ही रहा करती हैं, ज्यों ही कोई पकड़ने वाला उधर जाता है त्यों ही वह अपने बिल में छुत से छिप जाती हैं ।

७. पञ्चतरणी

अन्त में पञ्चतरणी का मैदान सामने आ गया । यह *कहा जाता है—कि एक बार भगवान् शिव इस स्थान पर अपना ताण्डव-नृत्य (जो नृत्य प्रलयकाल में होता है) कर रहे थे । वह अपने नृत्य में ऐसे आनन्दविभोर हो उठे कि उनका जटाजूट ढीला हो गया और उस में से गङ्गा जी की पांच धाराएं मैदान में निकल पड़ीं । यह पांचों धाराएं पंचतरङ्गिणी बनीं और बहुत पवित्र मानी गईं । इन में स्नान का बहुत महत्त्व वर्णन किया जाता है ।

---

* कथा के लिए "अमरनाथ माहात्म्य" भाग २ देखें ।

पञ्चतरणी का मैदान विस्तार में लगभग एक मील लम्बा और चौथाई मील चौड़ा है। इसी के बीचों-बीच एक प्रवाह चलता है, जो सूखे पर्वतों की ओर से आने वाले अन्य चार भागों के साथ मिल कर इन टेढ़े मोड़ों के साथ-साथ बहता है। इस के पूर्व की ओर एक बहुत बड़ा हिमशिखर है जिस पर वायु के द्वारा हिम ठोस बना दी गई प्रतीत होती है. जो कि विचित्र क्रेटर से बने पर्वत की सी बन जाती है, जैसी मैं ने कहीं नहीं देखी। दूरबीन के द्वारा देखने पर यह चन्द्रमा के क्रेटरों (ज्वालामुखी) जैसी दिखाई पड़ती है।

मौसम आज भी ठीक रहा। कभी-कभी एक छोटा सा बादल का टुकड़ा हमारे और सूर्य के मध्य में आ जाता उस से अकस्मात् तापमान गिर जाता और हम कांपने लग पड़ते। परन्तु तुरन्त बाद ही हमारा मित्र पवन उस मेघ पर आक्रमण करके उसे भगा देता और हम पुनः सुखप्रद आतप का लाभ पाते।

भोजन तथा अल्पनिद्रा के पश्चात् मैं पर्यवेक्षण के विचार से कैम्प के इधर-उधर घूमने के लिए निकल पड़ा। झट छिप जाने वाली गिलहरियां मेरे निकट ही कूकें मारने लगीं, परन्तु उन्हें पाना बहुत कठिन था, अतः मैं इस छोटे से लुभाने वाले एक भी जीव को प्राप्त करने में असमर्थ रहा और अपने आवास की पिछली ओर पहाड़ पर से आने वाले एक जलप्रपात के निकट घूमता रहा। मैं भान्ति-भान्ति के छोटे-छोटे जंगली पुष्पों की प्रचुरता पर मुग्ध था, जो वहां पर जगह-जगह खिले थे। एक स्थान पर एक वर्ग-गज क्षेत्र के अन्दर ही मैं ने पुष्पों के सात विभिन्न प्रकार देखे, जो सभी भिन्न रंगों के थे। बहुत सी अलभ्य जड़ी बूटियां इन निवास-शून्य पर्वतों में उत्पन्न हो जाती हैं, जिन में से बहुत सी बूटियां तो दुर्लभ तथा बहुमूल्य होती हैं। वहां पर सुन्दर पत्थर भी बिखरे पड़े

थे, उन में से कुछेक सुन्दर धारियों वाले थे और कुछ धूप में चमक रहे थे।

सायंकाल हम ने नियमित कीर्तन किया। इन पर्वतों पर संगीत आनन्ददायक है, परन्तु एक गीत गाने के अनन्तर ही मनुष्य थकान अनुभव करने लगता है। कीर्तन के अनन्तर हम ने भोजन किया और समय से पूर्व ही बिस्तर पर चले गए। क्योंकि दूसरे दिन हमारी यात्रा अपने लक्ष्य पर पहुँच जानी है अर्थात् कल हम श्री अमरनाथ जी की पवित्र गुफा में पहुँच जावेंगे।

× × × × ×

८. पञ्चतरणी से अमरनाथ

मेरे तम्बू के बाहर होने वाली—"श्री अमरनाथ स्वामी की जय"—ध्वनियों को सुन कर मैं प्रातः पांच बजे जागा। भक्त यात्री गुफा के मार्ग की ओर अग्रसर हो पड़े थे। इस समय इतनी ठण्ढक थी, कि मैं बाहर निकलने से पूर्व अपनी रजाइयों से एक घण्टा और अधिक लिपटा रहा। हम सभी आठ बजे लगभग तैयार हुए और बड़े उत्साह तथा उत्सुकता के भाव लिए हुए गुफा की ओर चल पड़े। प्रथा के अनुसार मैं ने गुफा में दर्शन से पूर्व कुछ भी खाया पिया नहीं।

पवित्र गुफा के लिए मार्ग पञ्चतरणी के तट के साथ-साथ जाता है। जिस पर्वत की तराई में हमारे तम्बू लगे हुए थे, हमें उस की परिक्रमा करके जाना पड़ता है। कुछ सौ गज़ तक मार्ग प्रवाह के साथ-साथ चलता है तदनन्तर यह मुड़ जाता है और तीव्रता से ऊपर को चढ़ता है, जिस में सीधे तथा ढालुआं मोड़ हैं। जिन में से कुछ (मोड़) तो यात्री को हतोत्साह कर देते हैं, विशेषतः जब मार्ग संकरा हो जाता है और फिसलने वाली भूमि पैरों के नीचे से धसकती हुई सचेत सा करती रहती है। हम तुरन्त ही अधिक

ऊंचाई पर पहुँचते हैं तथापि अभी भी अधिक ऊपर चढ़ रहे हैं। कई स्थानों पर मैं अपनी आंखें बन्द कर लेता हूँ और अपने शुभ की कामना करता हूँ, क्योंकि इस समय हम बोतल के ढकने के समान घूमने वाले मोड़ों को पार कर रहे थे।

तीन मील लगभग हम ऊंची से ऊंची चढ़ाई चढ़ते हैं, श्री अमरनाथ जी का बृहत् पर्वतश्रृङ्ग हमारे सामने आ जाता है। इस की घास से भरी ऊंची भूमियों में बड़ी कठिनता से—चट्टानों वाले शिखरों से कुछ सौ फुट नीचे—बकरियां और घोड़े घास चर रहे हैं। यह पशु बकरवालों की सम्पत्ति हैं। बकरवाल एक घूमने वाली जाति है, जो दाढ़ी रखते हैं और शीतकाल में नीचे मैदान में आ जाते हैं परन्तु गर्मियों में ऐसी गोचर भूमि में ऊपर चले जाते हैं। इन के तम्बू यहां पर सदा लगे रहते हैं जो कि दर्शक को (इन की स्थिति के) भ्रम में डाल सकते हैं। इस स्थान पर यदि मनुष्य अथवा पशु एक पग भी गलत चल दे, तो वह दो हज़ार फुट नीचे गढ़े में सपाट गिर पड़ेगा। परन्तु अभ्यास तथा सावधान रहना इन पशुओं तथा बकरवालों को ऐसे पतन से बचाता है और वह अपने डगर में बड़ी सुगमता से विचरते रहते हैं।

लगभग तीन मील की चढ़ाई के पश्चात् दक्षिण की ओर एक आकस्मिक मोड़ है। हम इस ओर तेज़ी से चढ़ने लगे। शीघ्र ही हम एक ढालुआं और तंग नाले के तल पर आ पहुंचे जो कि लगभग डेढ़ सौ गज़ चौड़ा, बहुत खड़ा और ऊंचे टीलों से सैंकड़ों फुट आकाश की ओर बढ़ रहा है। लगभग आधा मील तक हमें ठोस बर्फ पर चलना पड़ता है। अन्त में श्रीअमरनाथ जी की प्रसिद्ध गुफा दृष्टिगोचर होती है जो कि पर्वत के भीतर फैला हुआ बृहदाकार छिद्र सा है। हम इस प्रकार इस नाले के मध्य में पहुंचते हैं, जहां

पर कि गुफा से पचास गज़ नीचे हमारे लिए एक तम्बू लगाया गया था।

६. श्री अमरनाथ जी के चरणों में

गुफा के बाईं ओर पर्वत से अमरावती नदी बह रही है। यह एक पवित्रतम नदी है, रूढि के अनुसार भक्त-जन श्रद्धा से इस में स्नान करते हैं और इसकी विभूति गुफा में जाने से पहले अपने अङ्गों में रमाते हैं। यहां पर पुनः मैंने रूढ़ि को नहीं अपनाया और पात्रों में जल भरवा कर तम्बू में मंगवा लिया, परन्तु इस बार इसे गर्म नहीं किया और वैसे ही हिमशीतल जल में मैंने स्नान किया। यह साफ़ और गर्म दिन था अतः ठण्ढे पानी का स्नान कष्टजनक न हुआ, जैसा कि खयाल किया जा सकता है। इस ऊंचाई पर सूर्य खूब चमकता है और दर्शक को यह आश्चर्यकारक प्रतीत होता है। क्योंकि यह (सूर्य) नीचे की अपेक्षा यहां पर बृहदाकार भी प्रतीत होता है। हम सभी सूर्य की धूप से काफ़ी परेशान हुए। स्नान करके मैं कैम्प से केवल एक पीली धोती पहने हुए निकला और हम गुफा की ओर चढ़ाई चढ़ने लगे।

मार्ग्रेट नोबल—जो बहिन निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हैं—अपने "श्री स्वामी विवेकानन्द जी के साथ कुछ भ्रमणों के विवरण" में श्री स्वामी जी के अमरनाथ दर्शन का वर्णन इस प्रकार करती हैं। वह लिखती हैं "वह स्थान विशाल था, एक बड़े गिर्जाघर से भी अधिक खुला और हिम* के बने हुए वह अद्भुत शिव एक गहरी

* हिम, तुषार तथा तुहिन शब्द ऊपर से गिरने वाली बर्फ के लिये आते हैं, परन्तु ध्यान रहे कि यह शिवलिङ्ग अन्दर से टपकने वाले जल से ही बनता है, अतः इसे Ice कहा जा सकता है और इसके लिये अमरनाथ यात्रा-माहात्म्य में रसलिङ्ग अथवा सुधालिङ्ग शब्दों का प्रयोग किया गया है।

छाया वाले आले में ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे इन्हें अपने आसन पर अभिषिक्त किया गया हो ।" वह प्रमाणित करती हैं कि—"श्री स्वामी जी गुफा में प्रवेश करके इतने अधिक प्रफुल्लित हुए थे कि उनका सारा शरीर रोमाञ्चित (गद्गद) हो उठा, वह भक्ति में तल्लीन हो गये और स्वामी जी ने बाद में कहा—"मैं इतना आनन्दविभोर हो उठा हूँ जैसे कि यह हिमलिङ्ग साक्षात् शिव हैं ।" वहां पर तस्कर-प्रकृति (छीना-झपटी करने वाले) ब्राह्मण (पण्डे) न थे, कोई व्यापार न था, कोई धोखाधड़ी न थी, बल्कि यह सब पूजा और श्रद्धा थी। मैं ने आज तक कभी ऐसा धार्मिक स्थान नहीं देखा है ।" श्री स्वामी जी स्वयं बताते थे कि उन्हें एक इन्द्रजाल सा अनुभव हुआ जो कि उन्हें गुफा में प्रत्यक्ष हुआ। साक्षात् शिव उनके सम्मुख प्रकट हुए और उन्हें (स्वामी जी को) अमरत्व का वरदान दिया, जो कि अ-मरनाथ—अमरत्व प्रदान करने वाले भगवान् का वर है, अर्थात् श्री स्वामी जी तब तक न मरें जब तक कि वह स्वयं इस मर्त्य-लोक के बन्धनों को न तोड़ना चाहें। श्री स्वामी जी स्वयं श्वेत हिमपिण्ड की कविता में यह वर्णन करते हैं और बताते हैं कि, यह गुफा एक गडरियों की टोली ने आविष्कृत की थी, जो कि अपनी भेड़ों के यूथ का अन्वेषण कर रही थी और गर्मी में एक दिन गुफा में घुस पड़ी तो वहां देखा कि सामने न पिघलने वाला हिम है जो कि स्वयं साक्षात भगवान् शिव हैं।

यह गुफा परिमाण में दीर्घकाय है, इस का बाहरी भाग (मुख) अवश्य ही चारों ओर से चालीस गज़ परिमित होगा। यह पचहत्तर फुट ऊंची है तथा इसकी नीचे की ढलान पर्वत के बीच में अस्सी फुट गहरी चली गई है। इस के अन्दर लगभग पांच फुट ऊंचा हिम का एक प्रभाशाली पिण्ड उठ रहा है जो चमकीली नोक-

दार आकृति में पूर्ण होता है यही शिव जी की प्रतिमा के स्वरूप में प्रसिद्ध है। दक्षिण की ओर एक और शुद्ध श्वेत हिम का पिण्ड है जो लगभग छः फुट ऊंचा तथा तीन फुट चौड़ा है वह श्री गणेश जी की प्रतिमा माना जाता है। बाईं ओर एक छोटी सी हिमपिण्डी है जो शिव जी की सहधर्मिणी पार्वती की प्रतिमा मानी जाती है। लोग कहते हैं कि यह प्रतिमाएं चन्द्रमा की वृद्धि के साथ बढ़ती तथा क्षय के साथ क्षीण होती हैं अर्थात् पूर्णचन्द्र वाली पूर्णिमा के दिन यह पूर्ण हो जाती हैं और क्षीण चन्द्र वाली अमावस्या के दिन क्षीण हो जाती हैं। सारे भारतवर्ष में यह गुफा एक प्रसिद्ध पवित्र स्थान है।

ज्यों ही मैं ने इस में प्रवेश किया मुझे अकस्मात् ही एक विचित्र अनुभव होने लगा, जैसे कि मैं वहां पहले भी था और निश्चित ही वह गुफा का असाधारण वातावरण बहुत से लोगों पर शक्तिशाली प्रभाव डालता है। ज्यों ही मैं पवित्र गुफा में प्रविष्ट हुआ मेरा मन अत्यधिक आदर-भावना से भर गया। शिव जी के हिम-लिङ्ग के समक्ष मैं ने और मेरी पत्नी ने परम्परागत रीति से पूजा की और नकदी, कपड़ों तथा सूखे फलों की भेंट चढ़ाई। तदनन्तर हाथ जोड़ कर हम ने शिवस्तोत्र का गान किया। इसी प्रकार हम ने गणपति जी तथा पार्वती जी की हिमप्रतिमाओं की पूजा की और भेंट चढ़ाई।

इस में भेंट को बांटने का परम्परा से एक बड़ा विचित्र तथा मनोरंजक ढंग चला आ रहा है। कोई व्यक्ति गुफा में स्थिर रूप से नहीं रहा करता। यात्री जब चढ़ावा चढ़ा चुकते हैं तो उसे कैम्प अफसर—सरकारी अधिकारी—इकट्ठा कर लेता है। यह सरकारी अधिकारी यात्रियों के साथ २ जाता है। सिक्के तथा वस्तु दोनों प्रकार का चढ़ावा तीन बराबर हिस्सों में बांटा जाता है। एक हिस्सा

तीर्थ-यात्रा के महन्त को मिलता है, जो महन्त श्रीनगर में रहा करता है। दूसरा भाग मट्टन (मार्तण्ड तीर्थ—जो पहलगाम से तीस मील पर है) के पण्डों को मिलता है और तीसरा भाग मल्लिक मुसलमानों के परिवार को मिलता है—वह भी पहलगाम के निकट ही रहते हैं। इन तीनों भागीदारों के प्रतिनिधि गुफा तक हमारे साथ गए, ताकि वह निश्चित हो जावें और उसमें से कोई भी चढ़ावे के भाग से वंचित नहीं रहे।

पूजा समाप्त हुई। हम गुफा से लौटे और बाहर साफ़ धूप में आ गए। अन्दर ठण्ढ थी और मैं अपनी पतली धोती में कांप रहा था। गुफा के बाहर हम ने पहाड़ी कबूतरों का सुप्रसिद्ध जोड़ा देखा, जिस के विषय में कहा जाता है कि यह वर्ष भर यहां रहता है, जहां तक कि शीत ऋतु में भी, जबकि इस स्थान पर घास का तिनका भी नहीं दिखाई देता, उस समय यह क्या खाते हैं? यह एक आश्चर्य है। इस विषय में एक दन्तकथा* प्रसिद्ध है कि यह कबूतरों का जोड़ा शिव जी के दो भक्तों का है, यह दोनों ही भक्त थे और इन्हों ने शिव जी की समाधि में विघ्न किया, तब शिवजी ने इन्हें कबूतर बन जाने का शाप दिया। परन्तु यह दोनों अब भी शिव गुफा में ही रहते हैं। यह एक विचित्र घटना है। यह पक्षी बीसियों वर्षों से यहां निरन्तर देखे जा रहे हैं, जोकि कबूतर की साधारण आयु से अत्यधिक और असम्भव है। क्या अभी तक यह वही कबूतर हैं या उनके उत्तराधिकारी उनके मरने के बाद स्थानापन्न हो जाते हैं? यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

हम अपने तम्बू की ओर उतर आए, वहां हमारे लिए ताजा भोजन तैयार था जिसे खाने के बाद मैं कुछ देर के लिए सुस्ताने

* कथा भाग २. संस्कृत पुस्तक से देखने की कृपा करें।

लगा। अब गुफा पूर्ण रूप से विजन (निर्जन) थी और मैं पुनः घूमने लग पड़ा। इस बार मैं ने गुफा के अन्दर एक बहुत मनोरम दृश्य देखा और हिम प्रतिमाओं को भी विचित्र रूप में देखा जो कि वस्तुतः अद्भुत हैं।

१०. वापिसी

मैं ने कठिनाई से गुफा छोड़ी। एक अवर्णनीय आकर्षण वहां की जुदाई को मर्मभेदिती बना रहा था। चमकीला हिमलिङ्ग एक अद्भुत आकर्षण-शक्ति रखता है, अतः मैं ने वहां से अपने आप को बड़ी कठिनाई से मोड़ा।

हम ने पञ्चतरणी वापिस पहुंचने के लिए यात्रा बड़ी तीव्रगति से की और छः बजे कैम्प में पहुंच गए। नित्यकीर्तन के पश्चात् मैं सन्तोष तथा शान्ति की अनुभूति के साथ बिस्तर पर सो गया।

हम ने दूसरे दिन प्रातः पंचतरणी को छोड़ा, ताकि हम सायंकाल चन्दनवाड़ी पहुंच सकें और एक पड़ाव की यात्रा के समय में दो पड़ाव की यात्रा कर लें। ज्यों ज्यों डांडी झूलती जाती थी मैं पुनः एक विचित्र व्यथा अनुभव करता था, जैसे कि मैं एक प्रेमभरे मित्र को पीछे छोड़ रहा हूँ। मैं श्री अमरनाथ पर्वत के एक बार पुनः दर्शन प्राप्त करने को मुड़ा और श्री भगवान् अमरनाथ जी की सेवा में ध्यान लगा कर मैं ने मन से उन्हें मौन प्रणाम किया।

हम ने महागुनुस (पहाड़ी) के शिखर-पर्यन्त लम्बी तथा कठिन पांच मील लम्बी चढ़ाई चढ़ना प्रारम्भ की। मार्ग में हमारे दक्षिण की ओर हत्यारा तालाब नामक स्थान आया, जहां पर किसी वर्ष चालीस यात्री एक बर्फ के तोदे के सरकने से मृत्युग्रस्त हो गए थे जो कि बैठे हुए स्तोत्र पाठ कर रहे थे। इस मार्ग पर यात्रा के लिए अब भी प्रतिबन्ध है, क्योंकि यह अब भी भयावह ही है।

११. पुनः शेषनाग

ज्योंही हम शिखर पर पहुंचे, तो भारिकों ने गति तीव्र कर ली और हम दोपहर होते ही शेषनाग पहुँच गए। तब सहसा मैं ने चिरकालिक हिम से लदे तीन ऊंचे पर्वत शिखरों से व्याप्त भील का दृश्य देखने के लिए अपने प्रिय मार्ग की दिशा ली।

भोजनोत्तर हम पुनः चल पड़े, क्योंकि अब हम अन्धकार होने से पूर्व ही पिस्सू घाटी पार करने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। ज्यों ही मेरी डांडी मार्ग पर चलती जाती थी – जहां से शेषनाग ५०० फुट नीचे है—मैं अपने मन में एक उत्कट तथा अपरिहार्य अभिलाषा का अनुभव कर रहा था कि "मैं नीचे भील के किनारे पहुंच जाऊं।" इस कारण हम रुके और पर्वत के नीचे की ओर चलने लग गए। आधे मार्ग में ही मैं ने अकस्मात् अपने निकट एक गिलहरी की ध्वनि सुनी और एक कोने की ओर घूमते ही ठीक बीस फुट की दूरी पर एक गिलहरी को अपनी पिछली टांगों के बल पर खड़े पाया। हम नीचे भील के तट पर पहुंच गए और इसके हिमशीतल जल का पान किया। तट के अति निकट भी भील अथाह ही है।

हम तट के साथ-साथ चलने लगे, हम ने एक चट्टान देखी जिस पर एक सप्तशीर्ष (सात सिरों वाली) प्रतिमा कुरेद कर बनाई गई है, जिसे शेषनाग की प्रतिमा कहा जाता है। अन्त में हम अपने मार्ग पर लौट पड़े और परिश्रमसाध्य भयानक चढ़ाई चढ़ कर ऊपर पहुंचे।

इस चौथे दिन भी मौसम सुन्दर तथा स्वच्छ रहा। हमारे यात्रीदल में एक सज्जन सदा ही दुर्भविष्यत् की कल्पना करने वाले थे। वे सदा ही मौसम की खराबी, भूखण्ड-स्खलन और इसी प्रकार की दूसरी दुर्भविष्यत् की वाणियों की घोषणा किया

करते थे। सौभाग्य से हम सब के लिए पूरी यात्रा में मौसम आशातीत सुखद रहा। यदि मौसम खराब हो जाता, तो मैं निश्चित ही पिस्सू घाटी और इसी प्रकार की अन्य भयानक चढ़ाइयों को पूर्ण न कर पाता।

१२. पुनः चन्दनवाड़ी

ज्यों ही शेषनाग के दृश्य को ओझल कर देने वाले मोड़ से मुड़े तो वृक्ष पुनः दिखाई देने लगे और ज्यों-ज्यों हम चन्दनवाड़ी की ओर बढते गए तो वृक्ष घने होते गए।

अब हम पुनः पिस्सू घाटी पहुंच गए, परन्तु अब मैं भारिकों के विषय में दृढ़ विश्वास रखता था कि वह ढालुआँ उतराई को बड़ी सुगमता से पार करते हैं। सूर्यास्त से पूर्व ही हम चन्दनवाड़ी पहुँच गए, जहाँ पर कीर्तन तथा भोजन के पश्चात् हम ने रात भर विश्राम किया।

१३. पुनः पहलगाम और श्रीनगर

दूसरे दिन प्रातः हमने भारिकों, घोड़े वालों तथा हमारी तीर्थ-यात्रा में दूसरे सहायकों—जिन सब के परिश्रम से हमारी यात्रा पूर्ण हुई—में अच्छे पारिश्रमिक तथा पारितोषिक वितरण किए और हम अपनी यात्रा के अन्तिम पड़ाव पहलगाम—श्रीनगर पहुँचने—के लिए चल पड़े।

लिदर नदी अभी तक अपनी माता झील का हरा रंग लिए हुए पर्वत मध्य के संकरे मार्ग से वेग में बह रही है। छोटे-छोटे प्यारे पक्षी आनन्द भरी चूं चूं का गान गाते हुए एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष को जा रहे हैं। एक चट्टान पर बन्दर बैठा है और वह हमें आश्चर्य से गम्भीर हो कर देख रहा है।

मेरी वापिसी का समाचार अवश्य ही मेरे आने से पूर्व वहां पहुंचा, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि बहुत से स्थानों पर गुज्जर लोग

मेरे प्रति शुभ भावनाएं लेकर एकत्र हो गए। उनकी स्त्रियां मेरे स्वागत में पहाड़ी गीत गा रही हैं। गुज्जर भी एक प्रकार की घुमक्कड़ जाति है जो बैलों और भैंसों आदि के बड़े-बड़े दल रखते हैं और सर्दी में मैदानों में आ जाते हैं। इनके गीत डोगरा पहाड़ी गीतों की लय से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं।

मार्ग में मैं ने भारिकों से विनोदपूर्ण वार्तालाप आरम्भ किया। एक वृद्ध भारिक-जिसका मुखमण्डल पूर्णरूप से स्नेहभरा था—निरक्षर (अनपढ़) होने पर भी बुद्धिमत्तापूर्ण रूप में जीवन का सरल रहस्य मेरे सामने वर्णन करने लगा। उस ने कहा—"सरकार, ईश्वर उन की सहायता करता है जो धैर्यशाली हैं। कठिनाइयां तथा बाधाएं आती हैं, परन्तु उन्हें ईश्वर-विश्वास और धैर्य से सहन करना चाहिए। इस यात्रा को ही देखिए, पहले दिन भारी वर्षा हुई और उस दिन भारी असुविधा का सामना करना पड़ा। यदि आप उत्साह-हीन हो कर वापिस लौट आते, तो तीर्थ-यात्रा पूर्ण न हो पाती। परन्तु आप का ईश्वर पर विश्वास था, आप आगे बढ़े, परिणाम यह हुआ, कि यात्रा पूर्णतः सफल हुई"।

ज्यों ही हम पहलगाम के ग्राम में पहुँचे तो पहले घर के बाहर एक छोटा सा कश्मीरी बच्चा—केवल एक कमीज़ पहने हुए—बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा में खड़ा था। ज्यों ही मेरी डांडी उस के पास से निकली वह आनन्द से चिल्लाता हुआ अगले भारिक की बांहों में दौड़ कर लिपट गया। यह उस बच्चे का पिता था। उन दोनों की भेंट ने हृदयोल्लास का एक छोटा सा दृश्य उपस्थित कर दिया।

पहलगाम में हम क्लब में चले गए और एक लकड़ी के चबूतरे पर बैठ कर तेज बहने वाली नदी का दृश्य देखने लगे।

"ओ लिदर !" मैं गुनगुनाने लगा—"मैं ने तुम्हारा उद्गमस्थान उन वृहदाकार तीन हिमाच्छन्न पर्वतशिखरों के बीच देखा है, मैं ने यह भी देखा है कि तुम उन पर से हिमखण्डों को अगाध शेषनाग सरोवर में बहा कर लाती हो, ताकि तुम अपने आप को पुष्ट करके विशाल तथा शक्तिशाली बना पाओ। मैं ने तुम्हारे घुमाव और मोड़ों का अनुसरण किया है, तुम्हारे कुण्डों तथा तीव्र प्रवाहों को तंगघाटी के नीचे निहारा है। अब तुम गड़गड़ाती हुई थामे प्रवाह वाले विशाल झेलम नद में प्रविष्ट हो जाओगी।"

भोजनोत्तर मैं ने दो स्थानीय मन्दिरों का त्वरित दर्शन किया और तब हम श्रीनगर के लिए मोटर पर चल पड़े। मोटर चिनार के वृक्षों की पंक्तियों के बीचों बीच चलती है, सड़क के दोनों ओर धान तथा मक्की भरे खेत लहलहाते हैं, मेरे विचार बार बार पवित्र गुफा की ओर दौड़ते हैं कि वह ऊंचे ऊंचे पर्वत-शिखर कितने निर्जन और कैसे गहन दिखाई देते हैं। वह तंग और ढालुआं मार्ग कितने भयावह हैं ? तो भी मुझ में गुफा में प्रवेश करते ही कितनी शान्ति और निर्मलता आ गई थी। इस प्रकार मैं आशापूर्ण उत्साह रखता हूं कि "जब मैं इस जीवन के ढालुआं और संकरे मार्ग पार कर लूंगा तो एक गहन अन्तः-शान्ति मेरी प्रतीक्षा में होगी।"

—:०:—

शारदा लिपि—जिस में मूल अमरनाथयात्रामाहात्म्य लिखा हुआ है।

श्री अमरनाथ-कश्मीर-यात्रा

भाग २

श्रीभृङ्गीशसंहितान्तर्गतं श्रीमद् अमरनाथयात्रामहात्म्यम्

हिन्दी भाषानुवादसहितम्

—:०:—

ओं नमः श्रीमते भगवतेऽमरनाथाय ।

ओं श्रीगणेशाय नमः । ओं नमोऽमरेश्वराय ।

श्रीभैरवी—ओं श्रावं श्रावं महादेव महिमानमनुत्तमम् ! पुण्यं ह्यनन्तनागस्य सूर्यक्षेत्रस्य वै तथा ॥१॥ अधुना श्रोतुमिच्छामि यात्राममरनाथजाम् । साङ्गामकृत्वा देवेश यो लिङ्गं पश्यति प्रभो । स कां गतिमवाप्नोति वद शीघ्रं दयानिधे ॥२॥ श्रीभैरवः—शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यात्राममरनाथजाम् । यां श्रुत्वाऽपि नरः पुण्यमाप्नुयात्तीर्थजं प्रिये ॥३॥ यात्रामकृत्वा देवेशि लिङ्गं पश्यति यो नरः । स याति नरकं घोरं तीर्थद्रोही च पातकी ॥४॥ आदौ षोडशक्षेत्रे (शोराह यार)

श्री गणेश जी को नमस्कार । श्री अमरनाथ जी को नमस्कार । श्री भैरवी बोली—हे महादेव, अनन्तनाग के और सूर्यक्षेत्र के पुण्य तथा सर्वोत्तम महिमा को सुनते-सुनते अब मैं श्री अमरनाथ जी की यात्रा को सुनना चाहती हूं, जिसे पूरा न करके यदि (कोई) लिङ्ग (श्रीअमरनाथ जी) के दर्शन करता है, तो वह हे दयानिधे, किस गति को प्राप्त करता है । १-२ । श्री भैरव बोले—हे देवि, सुनो ; मैं अमरनाथ-सम्बन्धिनी यात्रा को कहता हूं, जिसे सुन कर भी मनुष्य तीर्थ से होने वाले पुण्य को प्राप्त कर लेता है । ३ । हे देवेश्वरि, सुनो, जो मनुष्य यात्रा न करके लिङ्ग के दर्शन कर लेता है, वह घोर नरक को प्राप्त करता है और तीर्थद्रोही तथा पातकी होता है । ४ ।

तु शिवपारे (शिवपोरा) ततः परम् । तत्रोपस्पृश्य पट्टिष्ठौ (पांद्दठ्न्) पुण्ये गङ्गाम्भसि प्रिये ॥५॥ पद्मापुरे (पांपुर) सिद्धक्षेत्रे स्नायाद् यायाद् अतः परम् । वारीशी (बोरुस, रुद्रगङ्गा) रुद्रगङ्गायां स्नात्वा गच्छेदतः परम् ॥६॥ ततो युवत्या (जवभ्रारू) पिंष्टोदे (पिटवन्ये) ऽवन्तिका (वान्तीपुर) सिद्धक्षेत्रके । तत्रोपस्पृश्य च जलं महानागस्य सुन्दरि । हरिद्राख्यं गणपतिं (हारी) नत्वा स्नात्वा व्रजेत्ततः ॥७॥ बलिहारे (बली यार) महाक्षेत्रे स्नात्वा प्रायादतः परम् । ज्येष्ठापाढ़े (गीरू के समीप) ततः स्नात्वा यायादग्रे महेश्वरि ॥८॥ वागाश्रमे (वागहामा) हस्तिकर्णं नत्वोपस्पृश्य वा व्रजेत् । चक्रेशे (चकदर) च तत स्नात्वा ततो देवकतीर्थके (देवकी यार) ॥९॥ स्नात्वा पुनर्हरिश्चन्द्र (बिज-बिहारा) तीर्थे यायात्ततः परम् । स्थूलवाटे (थजेवारा) ततः स्नात्वा-ऽमृततीर्थे महेश्वरि ॥१०॥ तत्र लम्बोदरीस्नानं कुर्यादेवमतन्द्रितः ।

पहले शोडषक्षेत्र (शोराहयार) में, तब बाद में शिवपार (शिवपोरा) में (जावे) । वहां पट्टिष्ठ (पांद्दठन) में पवित्र प्यारे गङ्गाजल में आचमन करके (आगे जावे) । ५ । इस के बाद पद्मापुर (पांपुर) सिद्धक्षेत्र में स्नान करे और आगे जावे । इस के आगे वारीशी रुद्रगङ्गा (बोरुस-रुद्रगङ्गा) में स्नान कर के आगे जावे । ६ । तब 'जवभ्रारू' 'पिटवन्ये,' तथा 'वान्तीपुर' के सिद्ध-क्षेत्रों में जावे । हे सुन्दरि, वहां पर महानाग का जल स्पर्श कर के हरिद्रानाम के गणपति को नमस्कार करके और स्नान कर के आगे जावे । ७ । तब 'बलीयार' नाम के महाक्षेत्र में स्नान करके आगे जावे । हे महेश्वरि तब 'गीरू के समीप' स्नान करके आगे जावे । ८ । 'वागहामा' में 'हस्तिकर्ण' जी को नमस्कार करके आचमन कर के जावे । तब 'चकदर' में स्नान करे और बाद में 'देवकीयार' में स्नान करे । ९ । फिर बीजबिहारा तीर्थ में स्नान करके वहां से आगे जावे । हे महेश्वरि, तब अमृत-तीर्थ 'थजेवारा' में स्नान करे । १० । वहां पर आलस्य रहित हो कर लम्बोदरी में स्नान करे ।

ततः सूर्याश्रमं (सूर्य गुफा, सीरहामा) गत्वा सूर्यगङ्गाजले शुभे।
स्नात्वा दत्त्वा च विधिवन्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥११॥ बद्धोरसि (बधोर)
पुनर्गङ्गामवगाह्य महेश्वरि। ततः सखर सखर, कुठोस) मासाद्य
स्नात्वा तत्पादमूलके ॥१२॥ संपूज्य गणपं यायाद्बद्धोरसि महेश्वरि।
गच्छेत् सरलके (सिद्ध-) ग्रामे तत्र स्नात्वा पुनः प्रिये ॥१३॥ ततः
खिल्यायने (खिलन) पुण्ये प्रणम्य विधिवद्धरिम्। नारायणं महाक्षेत्र-
मवगाह्य पुरातनम्। महाग्रामे मामलके (गणेश बल) गणेशं
समुपाश्रयेत् ॥१४॥ दृष्ट्वा मामेश्वरं लिङ्गं स्नात्वा मामेशवारिणि।
स्नायाद्भृगुपतेः क्षेत्रे (पहलगाम) नीलगङ्गा (पहलगाम से आगे,
लिदर) जले ततः ॥१५॥ स्थाण्वाश्रमे (चन्दनवाड़ी) नदीं पुण्यां
कोटिजन्माघनाशिनीम्। आरुह्य पर्वतं देवि पेषाख्यं (पिस्सू घाटी)
देवदुर्लभम् ॥१६॥ ततः स्वाश्रमनागस्य (शेषनाग) स्नानं कुर्याद्
यथाविधि। वायुवर्जनके वावजन) तीर्थे स्नात्वा दत्त्वा व्रजेत्पुनः ॥१७॥

तब 'सूर्य गुफा-सीरहामा' में जा कर पवित्र सूर्यगङ्गा के जल में स्नान कर के और विधिपूर्वक दान कर के ब्रह्महत्या से छूट जाता है ॥११॥ हे महेश्वरि, बधोर गांव में पुनः गङ्गा का अवगाहन कर के 'सखर-कठोस' में पहुंच कर गणेश जी के चरणों में स्नान कर के। १२। वहां गणेश जी की पूजा कर के सिद्ध गांव में पुनः स्नान करके, हे प्रिये। १३। पुण्य 'खिलन' में हरि को विधिवत् प्रणाम कर के पुराने नारायण महाक्षेत्र का अवगाहन कर के गणेशबल नाम के महाग्राम में श्री गणेश जी का आश्रय लेवे। १४। मामेश्वर जी के शिवलिङ्गका दर्शन कर के मामेश के जल में स्नान करके पहलगाम में नीलगङ्गा (लिदर) के जल में स्नान करे। १५। हे देवि, चन्दनवाड़ी में उसी करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करने वाली पवित्र नदी को प्राप्त कर देव-दुर्लभ पिस्सू घाटी पर चढ़े। १६। तब शेषनाग का विधिपूर्वक स्नान करे। तब वावजन तीर्थ में स्नान कर के और दान करके आगे चले। १७। तब महागोनस नाम के पर्वत पर चढ़े और

महागोनसनामानमारुहेत्पर्वतं ततः। डामरेश्वरमासाद्य पूजां कृत्वा यथार्हतः ॥१८॥ ततः पञ्चतरङ्गिण्या जलं तदवगाह्य वै। आरुह्य पर्वतं देवि गर्भागारसुमध्यतः ॥१९॥ अवरुह्यामरावत्यां स्नानं भस्माङ्गलेपनम्। विभूतिसितदेहश्च नृत्यमानो दिगम्बरः। आरुहेत्पर्वतगुहां महापातक-नाशिनीम् ॥२०॥ प्रणम्य विधिवद्भक्त्या सुधालिङ्गं सनातनम्। नरो न लिप्यते पापैः कोटिजन्मसमुद्भवैः ॥२१॥ दर्शनात्स्पर्शनाच्चापि पूजना-च्चापि वन्दनात्। अमरेशस्य लिङ्गस्य मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥२२॥ षट्स्नानानि वितस्तायां प्रोक्तानि जगदम्बिके। सप्तदशस्थलस्थानानि स्नानान्यन्यानि सुन्दरि ॥२३॥ त्रयोविंशविधा यात्रा स्मृता ह्यमरनाथगा। एवं कृत्वा नरो यात्रां पश्येल्लिङ्गं रसात्मकम्। स याति भैरवं क्षेत्रं यत्र नास्ति कृताकृतम ॥२४॥

इति श्री भृङ्गीशसंहितायां श्रीमदमरनाथमाहात्म्ये प्रथमः पटलः ॥ १ ॥

डामरेश्वर को प्राप्त कर यथायोग्य पूजा करे । १८ । तब पञ्चतरङ्गिणी में जल का अवगाहन करे। पर्वत का आरोहण कर के गर्भागार (पर्वतों) के मध्य में पहुंचे । १९ । अमरावती में उतर कर स्नान करे और भस्म से अङ्गलेपन करे। विभूति से शरीर मल कर नाचता हुआ महापातकों को नाश करने वाली दिगम्बर की गुफा में आरोहण करे। २० । उस सनातन सुधालिङ्ग (Ice Lingam) को विधिपूर्वक भक्ति से प्रणाम कर के मनुष्य करोड़ों जन्मों के पापों से छूट जाता है । २१ । अमरेशलिङ्ग के दर्शन, स्पर्श, पूजन और वन्दन से सभी पापों से छूट जाता है । २२ । हे जगन्माता, वितस्ता, (जेहलम) में छः स्नान बताये हैं। और हे सुन्दरि, सत्रह स्थलों के स्नान हैं।२३। इस प्रकार श्री अमरनाथ जी की यात्रा तेईस प्रकार की कही गई है। इस प्रकार यात्रा कर के जो मनुष्य रसलिङ्ग के दर्शन करे, वह भैरवक्षेत्र में पहुँचता है, जहां पर कि कर्मों के फल का झंझट नहीं है।२७।

भृङ्गीशसंहिता में श्रीमद्अमरनाथमाहात्म्य का पहला पटल पूर्ण। १।

श्रीभैरवी—सरलग्राममाहात्म्यं श्रुत्वा प्रीतास्मि सुन्दर। इदानीं श्रोतुमिच्छामि तीर्थं खिल्यायनं परम् ॥१॥ ग्रामे खिल्यायने पुण्ये तीर्थं नारायणाभिधम्। यदभूद् भगवन् सर्वं तन्मे त्वं कृपया वद ॥२॥ श्रीभैरवः—शृणु वक्ष्ये महादेवि तीर्थं खिल्यायनं परम्। यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकसंचयात् ॥३॥ पुरा महर्षयः सिद्धा वालखिल्याभिधाः शिवे। चेरुस्तपो दुश्चरं ते नियमेनोर्ध्वरेतसः ॥४॥ निराहारा यतात्मानः पादाङ्गुष्ठाग्रसंस्थिताः। समाधिलीना ह्यभवन् सहस्रं परिवत्सरान् ॥५॥ विष्णुध्यानपरासक्ताः शान्तात्मानो महौजसः। चिरेण भगवान् विष्णुर्दर्शनमोयिवान् प्रभुः ॥६॥ समाधिमुक्ता दृष्ट्वा तं भगवन्तं सनातनम्। उत्थायोत्थाय सहसा प्रणम्य दण्डवत्स्थिताः ॥७॥ नीलजीमूतसङ्काशं प्रफुल्लजलजेक्षणम्। शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-पाणिं पापहरं परम्। गरुडस्थं परं विष्णुं गिरा परमयै-

---

श्री भैरवी बाली—हे सुन्दर, सरल ग्राम के माहात्म्य को सुन कर मैं प्रसन्न हो गई हूँ। अब खिल्यायन (खिलन) के परम तीर्थ को सुनना चाहती हूँ। १। पवित्र खिल्यायन के गांव में नारायण नाम का जो तीर्थ था। हे भगवन्, आप कृपा कर के उस सब को मुझे बताइये। २। श्री भैरव बोले—हे महादेवि सुनो, खिल्यायन तीर्थ परम श्रेष्ठ है, जिसे सुन कर प्राणी महापातकों के सञ्चय से छूट जाता है। ३। हे शिवे, पहले ऊर्ध्वरेता वालखिल्य नाम के सिद्ध महर्षियों ने नियमपूर्वक कठिनता से किया जाने वाला तप किया। ४। वह निराहार, संयमी हो कर पैर के अंगूठे के अगले भाग पर खड़े हो गये और हज़ार बरस तक समाधि में लीन हो गये। ५। शान्त आत्मा वाले महातेजस्वी वह विष्णु के ध्यान में लग गए और भगवान् विष्णु प्रभु ने उन्हें देर से दर्शन दिए। ६। समाधि छोड़ कर उस सनातन भगवान् के उन्होंने दर्शन पाए और सहसा उठकर बार-बार दण्डवत् प्रणाम कर के खड़े हो गए। ७। नीले बादलों के समान, फूले हुए कमलों की

डयन् ॥८॥ ऋषय उचुः— महाविष्णुं प्रभविष्णुं पुराणमाद्यमृषिं
शिपिविष्टं गरिष्ठम्। गरीयसं भारसहं वरिष्ठं प्रपद्यामः शरणं त्वां
शरण्यम् ॥९॥ वेदात्मकं वेदवेद्यं पुराणं वरं वरेण्यं वरदं त्वां
शरण्यम्। हिरण्यगर्भमादिदेवादिदेवं हिरण्यबाहुं शरणं त्वां
व्रजामः ॥१०॥ वितत्याजाजवनीमुग्ररूपां क्षणं बालं तरुणं वै क्षणं
त्वाम्। क्षणं पुमांसं स्त्रीस्वरूपं क्षणं त्वां महानटं शरणमुपैमि
दिव्यम् ॥११॥ प्रसार्य जालं रागद्वेषादितन्तुं दुष्टं मनः पक्षिणं
प्राणमध्ये। दशग्राहं परिगृह्णाति सद्यो महानिषादं शरणं प्रपद्ये ॥१२॥
अनाद्यन्तं सवितारमजेयं पुरातनं नवनवं जायमानम्। वेदान्तवेद्यं
साङ्ख्ययोगेन योग्यं भूयोभूयः शरणं त्वां प्रपन्नाः ॥१३॥ इति स्तुत्वा

आंखों वाले, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म हाथ में लिए हुए, पापनाशक, गरुड़ पर बैठे हुये परम विष्णु भगवान् को उत्कर्ष वाली वाणी से पूजने लगे। ८। ऋषि बोले—प्रभावशाली, पुराने, आदि, ऋषि शिपिविष्ट (स्वर्गरूपी), गुरुतर, श्रेष्ठ में स्थित, भार को सहन करने वाले, वरेण्य और शरण देने वाले, आप की शरण में हम आते हैं। ९। वेदरूपी, वेदों से जानने योग्य, पुराने, वर, वरेण्य, वर देने वाले, शरण देने वाले, हिरण्यगर्भ, आदि देव के भी आदिदेव, हिरण्यबाहु आप की शरण में हम आते हैं। १०। जिस ने उग्ररूप वाली इस अजवनी (सृष्टि) को रचा और जो क्षण में बाल, क्षण में तरुण, क्षण में पुरुष, क्षण में स्त्री का रूप धारण करता है, ऐसे महानट विष्णु की दिव्य शरण में मैं प्राप्त होता हूं। ११। जो आप रागद्वेष, आदि तन्तुओं वाले जाल को फैला कर प्राणों के बीच में मनरूपी दुष्ट पक्षी को स्थापित करके दश इन्द्रियों के ग्रह से झट से ग्रहण कर लेता है मैं उस महानिषाद (विष्णु) की शरण में जाता हूं। १२। जिस का आदि और अन्त नहीं, जो सविता, अजेय, पुरातन, नया २ उत्पन्न होने वाला, वेदान्त से ज्ञेय, सांख्य और योग के ज्ञान योग्य है, हम बार-बार उस की शरण

महेशानं महाविष्णुं महेश्वरम् । प्रणम्य पतिता भूमौ पुनरुत्थापिताः प्रिये ॥१४॥ उवाच तांस्तदा विष्णुर्मेघगम्भीरया गिरा । तपसाऽनेन तुष्टोऽस्मि वरयध्वं वरं पुनः ॥१५॥ ददानि दुर्लभं विप्रा देवासुर-सुदुर्लभम् । श्रुत्वा तु वचनं तस्य विष्णोरमिततेजसः ॥१६॥ प्रत्यूचुस्तु महादेवं विष्णुममिततेजसम् । त्वद्दर्शनात्परं कोऽन्यो वरः श्रेष्ठो महेश्वर ॥१७॥ तथाऽपि वरदाद्देवाद् वृणीमस्तीर्थमुत्तमम् । श्रुत्वा तेषां वचः सौम्यमानन्दास्रु-परिप्लुतः ॥१८॥ दृष्टिं पदोः समादाय स गङ्गा-मुदचालयत् । पावयंश्चाश्रमं तेषां मुनीनां भावितात्मनाम् ॥१९॥ स्वयं तस्थौ च तत्रैव ग्रामे खिल्यायनाभिधे । आभूतसंप्लवं तावदिदं परमपावनम् ॥२०॥ बालखिल्याभिधं तीर्थं भविष्यति न संशयः । इत्युक्त्वा तांस्तदा विष्णुर्गतोऽन्तर्धानमच्युतः ॥२१॥ बालखिल्या

में जाते हैं । १३ । इस प्रकार महाप्रभु महाविष्णु महेश्वर की स्तुति करके प्रणाम कर वह भूमि पर गिर गए और फिर हे प्रिये भूमि से उठाए गए । १४ । तब विष्णु ने उन्हें बादलों जैसी गम्भीर वाणी से कहा, इस तप से मैं प्रसन्न हो गया हूं, तुम पुनः वर मांगो । १५ । मैं उस वर को दूंगा जो कि देवताओं और असुरों को भी दुर्लभ है । उस अपरिमित तेज वाले विष्णु का वचन सुन कर । १६ । अपरिमित तेज वाले महादेव विष्णु से बोले । हे महेश्वर, आप के दर्शनों से बढ़ कर और कौन सा श्रेष्ठ वर है । १७ । तो भी वर देने वाले देव से हम उत्तम तीर्थ का वर चाहते हैं । उन के इस सौम्य वचन को सुन कर आनन्द के आंसू भर कर । १८ । पैरों पर दृष्टि रख कर उन्होंने गङ्गा को हिलाया । उन पवित्र आत्मा वाले मुनियों के आश्रम को पवित्र करते हुए । १९ । वह स्वयं उसी खिलन गांव में रह गए । यह स्थान प्रलयकाल तक परमपवित्र करने वाला है । २० । यह बालखिल्य नाम का तीर्थ हो जावेगा, इस में कोई संशय नहीं है । उन्हें यह कह कर भगवान विष्णु अन्तर्धान हो गए । २१ । बालखिल्यों ने जिस

यत्र चेरुस्तपः परमदारुणम्। ततस्तु प्रथितो ग्रामो बालखिल्यायनः परः ॥२२॥ श्रीभैरवः—नारायणपदोद्भूतं क्षेत्रं यदभवत् किल। ततस्तु प्रथितं क्षेत्रं तीर्थं नारायणाभिधम् ॥२३॥ महापातकयुक्तोऽपि युक्तो वा ह्युपपातकैः। सद्यः प्रमुच्यते स्नानात् क्षेत्रे नारायणाभिधे ॥२४॥ नारायणाभिधे क्षेत्रे स्नातव्यमविशङ्कया। घोरात्कलियुगाद् देवि भीरुणा पुरुषेण च ॥२५॥ आजन्मनश्चेद् देवेशि पीयते मदिरा मुदा। मासमात्रं जलं तत्र पीत्वा मुच्येदसंशयम् ॥२६॥ अभक्ष्यभक्षणाद् देवि तथाऽपेयस्य पानतः। खिल्यायने प्रमुच्येत जलपानान्न संशयः ॥२७॥ नारी वा पुरुषो वापि ग्रामे खिल्यायने परे। नारायणाभिधे क्षेत्रे स्नात्वा मुच्येदसंशयः (म ?) ॥२८॥ मातृगामी महेशानि ग्रामे खिल्यायने परे। स्नात्वा पीत्वा च विधिवन्मुच्यते वर्षतः प्रिये ॥२९॥

जगह पर उस परम भयंकर तप को किया। तब से वह गांव बालखिल्यायन नाम से प्रसिद्ध हो गया ।२२। श्रीभैरव बोले - चूंकि यह क्षेत्र नारायण जी के पदों से उत्पन्न हुआ, इस कारण इस क्षेत्र का नारायण नाम हुआ ।२३। महापातकों से युक्त हो कर अथवा उपपातकों से युक्त हो कर नारायण नाम के क्षेत्र में स्नान करने से मनुष्य झट छूट जाता है ।२४। नारायण नाम के क्षेत्र में शङ्कारहित होकर घोर कलियुग से डरने वाले पुरुष को स्नान करना चाहिए ।२५। हे देवेशि, यदि जन्म से लेकर आनन्दपूर्वक मदिरा को पिया जाता है। तो एक मास भर इस का जल पीने से निश्चित मनुष्य छूट जाता है ।२६। यदि अभक्ष्य का भक्षण करे और हे देवि यदि अपेय का पान करे तो खिल्यायन का जल पीने से मनुष्य निश्चित छूट जाता है ।२७। खिल्यायन परम गांव नारायण नाम के क्षेत्र में स्नान से नारी अथवा पुरुष निश्चित मुक्त हो जाता है ।२८। हे महेश्वरि, मातृगामी खिल्यायन गांव में एक वर्ष भर विधिपूर्वक स्नान और पान कर के छूट जाता है ।२९। हे सुन्दरि, रजस्वलागामी, सूतिका का कामुक, गोघातक,

रजस्वलाऽभिगामी च सूतिका-कामुकोऽपि वा। गोघातकः पितृहा च मातृहा सुरसुन्दरि ॥३०॥ गरदो ह्यग्निदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः। स्त्रीघाती बालघाती च मुच्येत षण्मासतः प्रिये ॥३१॥ पुण्ये खिल्यायने ग्रामे क्षेत्रे विष्णोरनुत्तमे। स्नात्वा जन्मभवैः पापैः मुच्यते नात्र संशयः ॥३२॥ प्रायश्चित्तविहीनोऽपि यः कश्चिन्म्रियते प्रिये। पुण्ये खिल्यायने ग्रामे विष्णोः क्षेत्रे परे शिवे ॥३३॥ याति विष्णोः परं स्थानं यत्र गत्वा न शोचते। स्नात्वा पीत्वा च विधिवद् विष्णोः क्षेत्रे ह्यनुत्तमे ॥३४॥ मुच्यते पातकैर्घोरैः कोटिजन्मसमुद्भवैः। खिल्यायनसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥३५॥ खिल्यायने महादेवि दुष्करो दानसंग्रहः। तपः सुदुष्करं देवि कार्यं तत्रैव सुन्दरि ॥३६॥ खिल्यायने दुष्करं च स्नानं पानमपीश्वरि। आयुष्यं च यशस्यं च पुण्यं पापापनोदनम् ॥३७॥ खिल्यायने च कथितं तीर्थं नारायणाभिधम्।

पितृमातृघातक ।३०। विष देने वाला, अग्नि लगाने वाला, शस्त्र हाथ में लेने वाला, धन चुराने वाला, स्त्री-घातक, बाल-घातक यह सब हे प्रिये छः मास में छूट जाते हैं ।३१। खिल्यायन नाम के गांव में और विष्णु के सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र में स्नान कर के जन्म के पापों से छूट जाता है, इस में संशय नहीं है ।३२। हे प्रिये, विष्णु के क्षेत्र पुण्य खिल्यायन नाम के परम शिव-क्षेत्र में जो कोई प्रायश्चित्तरहित भी मर जाता है ।३३। वह विष्णु के परमस्थान को प्राप्त करता है, जहां जाकर वह शोक नहीं करता। इस विष्णु के सर्वश्रेष्ठ क्षेत्र में स्नान और पान करके ।३४। करोड़ों जन्मों के सञ्चित घोर पापों से छूट जाता है। खिल्यायन के समान तीर्थ न हुआ और न होगा ।३५। हे महादेवि, खिल्यायन में दान का संग्रह अति कठिन है। हे सुन्दरि, अति कठिन तप भी वहीं करना चाहिए ।३६। हे ईश्वरि, खिल्यायन में स्नान और पान भी बड़ा कठिन है। वह आयु और यश को बढ़ाता है, पुण्य है और पापों को दूर करता है ।३७। खिल्यायन में

दर्शनात्स्पर्शनाज्जन्तुर्मुच्यते नात्र संशयः ॥३८॥ अस्मिंस्तीर्थवरे रम्ये स्नानदान-प्रपानतः। मुच्येदेव न संदेहो विना ध्यानसमाधिभिः॥३९॥ एतद्रहस्यं परमं ग्रामे खिल्यायने परे। विष्णोस्तीर्थे शुभं गुह्यं कलि-कल्मषनाशनम् ॥४०॥ अप्रमेयगुणं ह्येतत्तव स्नेहात्प्रकाशितम्। इति खेलनके ग्रामे विष्णोः क्षेत्रे ह्यनुत्तमे ॥४१॥ दर्शनं स्पर्शनं दानं कुरु देवि प्रयत्नतः। इत्येतत् पटलं गुह्यं महापातकनाशनम्। श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत महापातककोटिभिः ॥४२॥

श्रीभृङ्गीशसंहितायां खेलनमहिमानाम द्वितीयः पटलः ॥ २ ॥

श्रीभैरवी—श्रुत्वा खेलनमाहात्म्यं भवन्मुखविनिःसृतम्। हरेः पुण्यस्य तीर्थस्य निवृत्तास्मि भवाम्बुधेः ॥१॥ अधुना श्रोतु-मिच्छामि स्थले मामलके शुभे। क्षेत्रं मामलकं नाम महापातक-

---

नारायण नाम का तीर्थ कहा गया है, उस के दर्शन और स्पर्श से जन्तु छूट जाता है इस में तनिक भी संशय नहीं है। ३८। इस सुन्दर श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान, दान और पान से ध्यान और समाधि के विना भी मनुष्य छूट ही जावेगा। इस में कई सन्देह नहीं है। ३९। उत्कृष्ट खिल्यायन ग्राम में यह परम रहस्य है कि विष्णु के शुभ और गुह्य इस तीर्थ में कलि के पापों का नाश होता है। ४०। अनुपम गुणों वाला यह रहस्य तुम्हारे स्नेह से प्रकाश में आया है। यह विष्णु के क्षेत्र अतिश्रेष्ठ खेलनक गांव में है। ४१। हे देवि, दर्शन, स्पर्शन, दान प्रयत्नपूर्वक करो। इस प्रकार यह पटल गुह्य और महापापों का नाश करने वाला है। इसे सुन कर और पढ़ कर मनुष्य करोड़ों महापातकों से छूट जावेगा। ४२।

श्रीभृङ्गीशसंहिता में खेलनमहिमानाम का द्वितीय पटल पूर्ण। २।

श्री भैरवी बोली—आप के मुख से हरि के पवित्र तीर्थ खेलन के माहात्म्य को सुन कर संसार सागर से निवृत्त हो गई हूं। १। मामलक के शुद्ध क्षेत्र में अब सुनना चाहती हूं कि मामलक नाम का क्षेत्र महापातकों का

नाशनम् ॥२॥ कथं मामलके देव महागणपतेः स्थलम्। यदि ह्यहमनुग्राह्या प्रिया तेऽस्मि तदा वद ॥३॥ श्रीभैरवः—शृणु देवि प्रवक्ष्यामि स्थानं मामलकं शुभम्। यस्य श्रवणमात्रेण नश्यन्ते ? विघ्न-राशयः ॥४॥ स्थलवाटात् पुरा देवि प्राचलत् स महेश्वरः। संस्थाप्य गणपं देवं द्वाःस्थं कक्ष्याद्वये शिवे ॥५॥ गतः खेलनकादूर्ध्वं दण्डकस्य मुनेर्वनम्। तत्र क्षणं च विश्रम्य देवास्तत्रागमन्मुदा ॥६॥ दृष्ट्वा देवान् समायातान् मामेति प्रवदन्मुहुः। मा मा गच्छत देवात्र प्राक्रोशच्च पुनः पुनः ॥७॥ श्रुत्वा क्रोशन्तमीशानं देवो गणपतिस्त्वरन्। स्वयंस्थः संभ्रमयुतः पातालादुत्थितस्तदा ॥८॥ मामेति प्रवदन्देवान् प्रगृह्य परशुं स्वयम्। मा मा प्रवदयत्येव महागणपतिस्तदा ॥९॥ सर्वे देवास्तु तच्छब्दे लीना आसन्महेश्वरि। यतः प्रलीनो देवौघः ईश्वरे सच्चिदा-त्मनि ॥१०॥ ततः स कथितो ग्रामो मामलाख्यो महेश्वरि। मा मा

नाश करने वाला है । २ । मामलक में महागणपति का स्थान कैसे है ? यदि मैं आपकी कृपापात्र प्रिया हूं तो आप मुझे कहें । ३ । श्री भैरव बोले—हे देवि सुनो, मैं मामलक स्थान को कहता हूँ, जिस के सुनने मात्र से ही करोड़ों विघ्नराशियां नष्ट हो जाती हैं । ४ । हे देवि, पहले महेश्वर स्थल-वाट से चले। हे शिवे, तब उन्होंने गणेश जी को द्वारपाल बनाया । ५ । वह खेलन से आगे दण्डक मुनि के वन में गए। वहां पर क्षण भर विश्राम किया। इतने में प्रसन्नता से देवता वहां आ गए । ६ । देवताओं को आए हुए देख कर वह बार-बार मा-मा (मत-मत) कहने लगे । बार-बार 'हे देवताओ यहां मत आओ' यह चिल्लाने लगे । ७ । ईशान (शिव) जी को चिल्लाते हुए सुन कर जल्दी से गणेश जी स्वयं संभ्रम में पड़ कर पाताल से उठ पड़े । ८ । स्वयं परशु हाथ में लेकर देवताओं को 'मा-मा' कहने लगे । तब महागणपति 'मा-मा' कहते जा रहे थे । ९ । हे महेश्वरि, उस शब्द पर सभी देवता वहीं लीन हो गए। चूंकि देवसमूह सच्चिदात्मक ईश्वर में लीन हो गया । १० । अतः वह ग्राम हे महेश्वरि, मामल नाम से कहा गया । हे

गच्छत देवौघा भयाल्लीनाः परे शिवे ॥११॥ ततः स प्रोक्तो देवेशि ग्रामो मामलसंज्ञकः । दृष्ट्वा गणपतिं त्रस्तं पातालादुत्थितं प्रिये ॥१२॥ तदा प्रोवाच तं देवं गणेशं च शिवः स्वयम् । यस्मान्मामेति शब्दं तं श्रुत्वा चोदचलः स्वयम् ॥१३॥ तस्मादत्र चिरं तिष्ठ विघ्नसंघान् प्रणाशयन् । यः कश्चिन्मानवो लोके ह्यत्र त्वां पूजयिष्यति ॥१४॥ सर्वान् विघ्नान् विनिर्जित्य सिद्धिं समधिगच्छति । सर्वान् कामानवाप्नोति पशून् पुत्रान् धनं तथा ॥१५॥ मोक्षं च प्राप्नुयान्नित्यमर्चन् गणपतिं सदा । पुत्रकामो लभेत् (?) पुत्रं धनकामो लभेद् (?) धनम् ॥१६॥ विद्याकामो लभेद् विद्यां स्वर्गार्थी स्वर्गमाप्नुयात् ॥१७॥ वर्षे वर्षे तु यः कश्चिन्माधवे मासि नित्यशः । भूते शुक्ले ह्युपोष्यैकां रजनीं मूर्ति-सन्निधौ ॥१८॥ स सर्वाः कामनाः प्राप्य मृतो मोक्षमवाप्नुयात् । विनायकचतुर्थ्यां वै पूजयेद् यो गणेश्वरम् ॥१९॥ मामेश्वरसमीपे तु

देवगण 'मत आओ मत आओ', इस भय से देवगण परम शिव में लीन हो गए । ११ । तब वह ग्राम मामल नाम से कहा गया । हे प्रिये, डरे हुए गणपति को पाताल से उठे हुए देख कर । १२ । स्वयं शिव जी गणेश देव से बोले । चूं कि आप स्वयं 'मा मा' शब्द सुन कर चल पड़े हो । १३ । अतः तुम यहां पर विघ्नसमूहों को नष्ट करते हुए देर भर रहो ! संसार में जो कोई मनुष्य आप की यहां पर पूजा करेगा । १४ । वह सभी विघ्नों को जीत कर सिद्धि प्राप्त करेगा । सभी कामनाओं, पशुओं, पुत्रों तथा धन को प्राप्त करेगा । १५ । सदा गणपति की पूजा करते हुए नित्य मोक्ष को प्राप्त करेगा । पुत्र चाहने वाला पुत्र पाएगा और धन चाहने वाला धन प्राप्त करेगा । १६ । विद्या चाहने वाला विद्या प्राप्त करेगा और स्वर्ग चाहने वाला स्वर्ग को प्राप्त करेगा । १७ । जो मनुष्य प्रतिवर्ष प्रतिदिन वैशाख मास की शुक्ल चतुर्दशी को मूर्ति के पास एक रात उपवास करता है । १८ । वह सभी कामनाओं को प्राप्त कर के मरने के अनन्तर मोक्ष प्राप्त करता है ।

ह्यनन्तं पुण्यमाप्नुयात् । त्वां पूजयित्वा यो देवं मामेशं पूजयेन्नरः ॥२०॥
स पुण्यफलमाप्नोति न पुनः स्तन्यपो भवेत् । इति दत्त्वा वरान् देवो
गणेशाय स्वयं हरः ॥२१॥ पुण्ये वै दण्डकारण्ये लीनो मामेश्वराख्यया ।
दृष्ट्वा मामेश्वरं लिङ्गं पुण्ये मामलके नरः ॥२२॥ पूजयित्वा गणपति-
मश्वमेधमवाप्नुयात् । स्नात्वा मामेश्वरे कुण्डे दृष्ट्वा मामलकं प्रभुम् ॥२३॥
नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा । मामेश्वरसमीपे तु दृष्ट्वा
गणपतिं शिवे ॥२४॥ विधिवत्पूजयित्वा तं सर्वां सिद्धिमवाप्नुयात् ।
विघ्नेशं च समभ्यर्च्य पुण्ये मामलके पुमान् ॥२५॥ न विघ्ना न
ग्रहाश्चैव नेतयो* जगदम्बिके । पराभवन्ति तं नेह परत्र च महेश्वरि ॥२६॥
स्वयंभुवं गणपतिं मामलेश्वरसन्निधौ । यः पूजयेत् परं भक्त्या ज्योतिष्टो-

---

विनायक चतुर्थी को जो गणेश जी की पूजा करे । १९ । मामेश्वर के समीप वह अनन्त पुण्य को प्राप्त करेगा । जो मनुष्य आप की पूजा कर के मामेश की पूजा करता है । २० । वह पुण्य फल को प्राप्त करता है, पुनः उसे जन्म नहीं लेना पड़ता । इस प्रकार शिवजी स्वयं गणेश जी को वर देकर । २१ । पवित्र दण्डकारण्य में मामेश्वर नाम से लीन हो गये । पुण्य मामलक में मनुष्य मामेश्वर लिङ्ग को देख कर । २२ । गणपति की पूजा कर के अश्वमेध को प्राप्त करेगा । मामेश्वर कुण्ड में स्नान कर के और मामलक प्रभु के दर्शन प्राप्त कर के । २३ । जैसे कमल पर जल नहीं टिकता, वैसे ही उस पर पाप नहीं टिकते । हे शिवे, मामेश्वर के पास गणपति के दर्शन कर के । २४ । उनकी विधि पूर्वक पूजा कर के सारी सिद्धि को प्राप्त करेगा । पवित्र मामलक में मनुष्य विघ्नेश्वर की पूजा कर के । २५ । विघ्नों से, ग्रहों से, ईतियों* से, इस लोक में या परलोक में कभी भी, हे जगदम्बिके महेश्वरि, पराभूत नहीं होता । २६ । जो स्वयंभू गणेश जी को मामलेश्वर के समीप परम भक्ति से पूजता है, वह ज्योतिष्टोमयाग के फल को

---

*अतिवृष्टि, अनावृष्टि, आदि ।

ममवाप्नुयात ॥२७॥ विनायकं च मामेशं दृष्ट्वा प्राप्नोति पुष्कलम् । फलं च सोमयागस्य नरो नियतमानसः ॥२८॥ मामेशं विघ्नराजं च दृष्ट्वा मुच्येत बन्धनात् । दृष्ट्वा विघ्नेश्वरं देवि स्पृष्ट्वा मामेश्वरं तथा । पूजयित्वा तु देवेशि नरो न निरये वसेत् ॥२६॥ इत्थं मामलके ग्रामे माहात्म्यं गणपस्य ते । कथितं कृपया देवि महापातकनाशनम् ॥३०॥ इत्येष पटलो गुह्यो मया तेऽद्य प्रकाशितः । श्रुतश्च पठितश्चापि विघ्नसंघात्प्रमोचयेत् ॥३१॥

इति श्रीभृगीशसंहितायां गणेशमहिमा नाम तृतीयः पटलः ॥३॥

श्रीभैरवी—श्रुत्वा गणपतेर्देव महिमानमनुत्तमम् । मामेश्वरस्यापि तथा प्रीतास्मि जगदीश्वर ॥१॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि नदीं लम्बोदरीं तथा । अनुग्राह्या प्रिया ते चेत्तदा मे कृपया वद ॥२॥ श्रीभैरवः— एकदा संस्थितस्यापि कैलासे परमेशितुः । द्वाःस्थोऽभूद् देवदेवेशि स्वयं गण-

---

प्राप्त करता है । २७ । मामेश विनायक के दर्शन कर के निश्चित मन वाला मनुष्य सोमयाग के अत्यधिक फल को प्राप्त करता है । २८ । मामेश विघ्नराज के दर्शन कर के मनुष्य बन्धन से छूट जावेगा । हे देवि, विघ्नेश्वर के दर्शन कर के और मामेश्वर के स्पर्श कर के, हे देवेशि, मनुष्य कभी दुःख में नहीं रहता । २६ । हे देवि, इस प्रकार मैं ने मामलक गांव में महापातकों के नष्ट कर देने वाला गणेश जी का महात्म्य आप से कहा है । ३० । इस प्रकार यह गोपनीय पटल मैं ने आप को प्रकट कर दिया है । यदि इसे सुना जाय या पढ़ा जाय तो यह विघ्नों के समूहों से छुड़ा देगा । ३१ ।

श्री भृङ्गीशसंहिता में गणेशमहिमा नाम तृतीय पटल समाप्त । ३ ।

श्रीभैरवी बोलीं—हे देव, गणपति की सर्व श्रेष्ठ महिमा तथा मामेश्वर की महिमा सुन कर मैं हे जगदीश्वर परम प्रसन्न हो गई हूं । १ । अब मैं लम्बोदरी नदी की कथा सुनना चाहती हूं । यदि मैं आपकी प्यारी हूं, तो आप कृपापूर्वक कहें । २ । श्री भैरव बोले—एक बार परमेश कैलास में थे और तब स्वयं गणपति द्वारपाल बने थे । ३ । गणेश जी को उस परम

पतिस्तदा ॥३॥ गणेशं कथयामास स्वयं स भगवान् परः। आगच्छेन्मा कश्चिदत्र देवानपि निषेधय ॥४॥ श्रुत्वा वाक्यं महेशस्य महागणपतिस्तदा। निषेधन् नन्दिना सार्धं शासनं पालयन् प्रभोः ॥५॥ देव्या सह महादेवः क्रीडालापपरोऽभवत्। तयोरेवं निवसतोः कैलासे शुभमन्दिरे ॥६॥ एतस्मिन्नन्तरे देवि शक्रो देवगणैः सह। त्रिपुरार्दितो ह्याजगाम द्रष्टुकामो महेश्वरम् ॥७॥ स्वयं गणपतिस्तत्र न्यषेधत्सुरपं तथा। शक्रः क्रोधसमाविष्टो वज्रपातं समादधे ॥८॥ हुङ्कारेण गणेशोऽपि बाहुमस्तम्भयद्धरेः। स्वबाहुं स्तम्भितं दृष्ट्वा शक्रो गणपतिं तदा। तुष्टाव वाग्भिरर्थ्याभिर्दण्डवत्प्रणिपत्य सः ॥९॥ शक्र उवाच—अप्रमेयगुणं नित्यं गणेशं च सुरोत्तमम्। वेदान्तवेद्यं सर्वज्ञं पूजितं च सुरेश्वरैः ॥१०॥ ओङ्कारं परमं ब्रह्म ह्यक्षरं शिवमव्ययम्। पार्वतीप्रियपुत्रं च प्रणमामि

भगवान् ने स्वयं कहा। कि —यहां पर कोई न आवे और देवताओं को भी रोक दो।४। तब महागणपति महेश के वाक्य को सुन कर प्रभु का शासन पालन करते हुए नन्दी के साथ सब को रोक रहे थे।५। इस समय महादेव देवी के साथ क्रीडा और बातें कर रहे थे। उन के इस प्रकार कैलास के शुभ मन्दिर में निवास करते करते।६। त्रिपुर नामी राक्षस से सताए हुए इन्द्र जी देवताओं समेत महादेव जी के दर्शन करने के लिए आ गए।७। स्वयं गणपति ने देवराज इन्द्र को भी रोक दिया। क्रोध में भरे इन्द्र ने वज्र की चोट लगानी चाही।८। परन्तु गणेश जी ने हुङ्कार से इन्द्र की बाहु को स्तम्भित कर दिया। अपनी बाहु को स्तम्भित देख कर इन्द्र ने श्री गणपति जी की बड़ी दर्द भरी वाणी से स्तुति करनी आरम्भ की और उन्हें दण्डवत् प्रणाम कर के प्रसन्न करना चाहा।९। इन्द्र बोला—अवर्णनीय गुणों वाले, नित्य, देवश्रेष्ठ, वेदान्त से जानने योग्य, सर्वज्ञ. देवराजों से पूजित गणेश जी को।१०। ओङ्कार रूप, परम ब्रह्मस्वरूप, अक्षर, निर्विकारी, शिव, पार्वती के प्रिय पुत्र गणनाथ जी को मैं नमस्कार करता हूं।११। अद्वय ब्रह्म से अभिन्न,

गणेश्वरम् ॥११॥ अद्वयानवच्छेद्यं शिवाद्वयविबोधितम् । स्वप्रकाशं परात्मानं प्रपद्ये तं विनायकम् ॥१२॥ वैरिविघ्नप्रदं नित्यं भक्तानां सिद्धिदायकम् । शिवसूनुं परानन्दं नमस्यामि विनायकम् ॥१३॥ मोदकाहारपरममक्षमालाकरं परम् । त्रिनेत्रं गजवक्त्रं च तं प्रपद्ये महेश्वरम् ॥१४॥ स्वदन्तं परशुं चैव धारयन्तं भुजद्वये । रक्तवर्णाम्बरधरं रक्तमालाधरं परम् ॥१५॥ विघ्नराशीन विकिरन्तं करक्षेपैर्मुहुर्मुहुः । अनन्तं परमं तत्त्वं सारात्सारतरं परम् ॥१६॥ वेदागमदुरुच्छेद्यं प्रपद्ये गणनायकम् । अप्रमेयगुणायापि त्र्यक्षाय वरवर्णिने । विनायकाय देवाय भूयोभूयो नमोनम. ॥१७॥ श्रीभैरवः—इत्थं गणपतिः श्रुत्वा वाचं सुरपतेस्तथा । क्रोधंपरं संजहार दृशा पश्यन् सुरेश्वरम् ॥१८॥ मोचयामास तं बाहुं गणेशः परया मुदा । देवोऽपि स्वं जगामाशु

अद्वय शिव से विबोधित, स्वयंप्रकाश और परमात्मा विनायक की शरण में मैं जाता हूं । १२ । वैरियों को विघ्न देने वाले, नित्य, भक्तों को सिद्धि देने वाले, परानन्द, शिव के पुत्र विनायक जी को मैं नमस्कार करता हूँ । १३ । जिन्हें मोदक (लड्डुओं) का आहार ही प्यारा है, तथा जिनके हाथ में अक्षमाला है उन महाशक्तिशाली शङ्कर तथा गणेश का मैं आश्रय लेता हूँ । १४ । दोनों भुजाओं में अपने दांत तथा परशु (कुल्हाड़े) को धारण किए हुए, लाल कपड़ों और लाल माला को धारण किये हुए परम प्रभु । १५ । अपनी सूंड को इधर-उधर हिलाने से बार-बार विघ्नों की राशियों को बखेरते हुए, अनन्त, परम तत्त्व तथा सार से परमतम साररूप (उन गणेश का मैं आश्रय लेता हूं) । १६ । वेद और शास्त्रों से प्रतिपादित गणेश का आश्रय लेता हूं, अप्रतिम गुणों वाले, तीन आंखों वाले, अच्छे वर्ण वाले विनायक देव को बार-बार नमस्कार हो ।१७। श्री भैरव बोले—इस प्रकार देवराज की वाणी सुन कर गणेश जी ने परम क्रोध को दूर कर दिया और इन्द्र की ओर देखा ।१८। गणेश जी ने प्रसन्न होकर (इन्द्र की) उस बाहु को छुड़ा दिया और अपनी कामना पूर्ण करके इन्द्र

धाम कामसमन्वितः ।।१६।। प्रणिपत्य महेशस्य सुतं मन्त्रविनायकम् । क्रोधसंहारकं नाम स्तोत्रं गणपतेर्मुदा ।।२०।। त्रिकालं श्रद्धया युक्तः पठन्मुच्येत संकटात् । ततो गणपतिर्देवि तृषितः क्षुधितोऽपि च ।।२१।। भुक्त्वा स्वादुफलं तत्र पपौ गङ्गां सुपुष्कलाम् । पीत्वा गङ्गां स विघ्नेशस्तदा लम्बोदरोऽभवत् ।।२२।। लम्बोदरेति वै नाम्ना ह्याजुहाव हरस्तदा । गङ्गां शुष्कां ततो दृष्ट्वा हरो गणपतेः प्रिये ।।२३।। डमरुणाऽहनत्तस्य ह्युदारमुदरं तदा । अवमन्मुखतो गङ्गां तदा गणपतिः प्रिये ।।२४।। सैव लम्बोदरी जाता लम्बोदर-विनिःसृता । यस्माल्लम्बोदरात्तस्य गणेशस्य विनिःसृता ।।२५।। तस्मात्प्रोक्ता पुराविद्भिर्महालम्बोदरी नदी । लम्बोदर्यां नरः स्नात्वा मुच्येज्जन्मोद्भवैरघैः ।।२६।। सकरस्य समीपे तु स्नाति लम्बोदरे जले । स याति विघ्नरहितः शिवलोकं सनातनम् ।।२७।। लम्बोदरीजलस्पर्शः कोटिजन्माघनाशनः । करणीयो

भी अपने धाम को चले गये । १६ । महादेव के पुत्र मन्त्रविनायक को नमस्कार करके इस क्रोध संहारक नाम गणेश के स्तोत्र को जो कोई प्रसन्नता से । २० । श्रद्धा से युक्त होकर पढ़े, वह संकट से छूट जाता है । हे देवि, तब भूखे और प्यासे गणपति जी ने । २१ । स्वादु फल खाये और वह उस गङ्गा जी को पी गये । तब गङ्गा को पीने से विघ्नेश लम्बोदर बन गये ।२२। तब उन्हें शिव ने लम्बोदर नाम से पुकारा । तब शिव जी ने गङ्गा को सूखे हुए देख कर हे प्रिये गणपति के । २३ । उदार पेट में डमरु से चोट लगाई । हे प्रिये, तब गणपति ने मुख से गङ्गा जी को उगल डाला । २४ । लम्बोदर से निकल कर वही लम्बोदरी बन गई, चूंकि वह गणेश के उस लम्बोदर से निकल पड़ी । २५ । इसलिये इसे पुरातत्त्व वाले महालम्बोदरी नदी कहते हैं, लम्बोदरी में स्नान करके मनुष्य जन्म भर के पापों से छूट जाता है ।२६। सकर के पास लम्बोदर के जल में जो स्नान करता है, वह विघ्न-रहित होकर सनातन लोक को जाता है ।२७। लम्बोदरी के जल का स्पर्श करोड़ों जन्मों के पापों का नाश करने

महादेवि मामलेशस्य सन्निधौ ॥२८॥ लम्बोदरभवां यो वै नदीं परम-पावनीम् । स्नाति यो विधिवन्मर्त्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२६॥ गां हिरण्यं सुवासश्च लम्बोदरीनदीतटे । यो ददाति द्विजश्रेष्ठे ह्यनन्तं फलमाप्नुयात् ॥३०॥ लम्बोदरीनदीतीरे यः स्नायात् परया मुदा । स याति शिवसालोक्यं यत्र गत्वा न शोचते ॥३१॥ भूयोभूयः किमुक्तेन नरैश्च पतितैः प्रिये । लम्बोदरीनदीतीरे स्नातव्यमविशङ्कया ॥३२॥ इति ते कथिता देवि लम्बोदरीनदी शुभा । श्रुता सुभक्तिदा पुंभिर्महापातकनाशिनी ॥३३॥ इत्येष पटलो गुह्यः कलिकल्मषनाशनः । श्रुतोऽनुध्यातः पठितो महापातकहा कलौ ॥३४॥

इति श्रीभृङ्गीशसंहितायां गणेशमहिमा नाम चतुर्थः पटलः ॥४॥

श्रीभैरवः—शृणुदेवि प्रवक्ष्यामि भृगोस्तीर्थमनुत्तमम् । यच्छ्रुत्वा

वाला है, हे देवि यह मामलेश के पास करना चाहिए ।२८। लम्बोदर से उत्पन्न परम पवित्र लम्बोदरी नदी में जो मनुष्य विधिवत् स्नान करता है, वह सभी पापों से छूट जाता है । २६ । जो मनुष्य लम्बोदरी नदी के किनारे गाय, सोना तथा अच्छे कपड़े किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को देता है, वह अनन्त फल को प्राप्त करता है । ३० । लम्बोदरी नदी के किनारे जो मनुष्य परम प्रसन्नता से स्नान करता है, वह शिव के समान उस लोक को प्राप्त करता है—जहां जाकर उसे शोक नहीं होता । ३१ । बार-बार कहने का क्या फल है ? हे प्रिये, पतित मनुष्यों को लम्बदरी नदी के किनारे शङ्का छोड़ कर स्नान करना चाहिये ।३२। इस प्रकार हे देवि, मैं ने तुम्हें शुभ लम्बोदरी नदी कह दी है, जो कि सुनने से मनुष्यों के महापापों को नष्ट करती है और अच्छी भक्ति देती है । ३३ । इस प्रकार यह गुप्त पटल कलि के पापों को दूर करता है, इसके सुनने से, ध्यान करने से तथा पढ़ने से कलियुग में महापाप नष्ट हो जाते हैं । ३४ ।

भृङ्गीशसंहिता में लम्बोदरी महिमा नामक चतुर्थ पटल पूर्ण ।४।

श्री भैरव बोले—सुनो देवि, मैं भृगु के अत्युत्तम तीर्थ के विषय में

मुच्यते जन्तुर्महापातकसंचयैः ॥१॥ भृगुर्मुनिवरो देवि परिशीलवने पुरा। तपश्चचार सुमहद्देवैरपि सुदुष्करम् ॥२॥ दिव्यं वर्षसहस्रं तु परिशीलयतो वनम्। जगाम परमर्षिश्च नियतस्य परात्मनि ॥३॥ आजगाम तदा तं तु विष्णुर्दर्शयितुं मुदा। सर्वैर्देवगणैः सार्धं भृगुः प्रोवाच तं हरिम् ॥४॥ भृगुरुवाच--विष्णो जिष्णो महाविष्णो प्रभविष्णो जगत्पते। अप्रमेयानन्तगुण भूयोभूयोश्च ते नमः ॥५॥ इति स्तुत्वा महाविष्णुं प्रभविष्णुं महेश्वरम्। दण्डवत्प्रणिपत्याह भूयो भूयो नमोऽकरोत् ॥६॥ उत्थाय प्रणतं तत्र भृगुं विष्णुः सनातनः। आनन्दाश्रुपरिक्लिन्नोऽचुम्बन्मूर्धनि तं मुनिम् ॥७॥ आलिलिङ्गतुरन्योन्यं भृगुविष्णू महेश्वरि। तदङ्गस्वेदभवैर्जलैः परमपावनैः ॥८॥ पुण्यं तीर्थमभूद्देवि परिशीलवनं परम्। भृगोरालिङ्गनाद् यस्माद्धरिस्वेदसमुद्भवम् ॥९॥ पुण्यं सुप्रथितं

कहता हूं, जिसे सुन कर प्राणी महापातकों के सञ्चय से छूट जाता। १। हे देवि, पहले मुनि श्रेष्ठ भृगु ने परिशीलवन में बहुत बड़ा तप किया जो कि देवता भी नहीं कर सकते। २। इस प्रकार दिव्य हज़ार वर्ष वन का परिशीलन करते हुए परमर्षि नियत परमात्मा को प्राप्त कर गए। ३। तब विष्णु प्रसन्न होकर उसे दर्शन देने को सब देवताओं के साथ आ गए, विष्णु से भृगु कहने लगे। ४। भृगु बोले—हे विष्णु, हे जीतने वाले, हे महाविष्णो, हे प्रभावशाली, हे जगत् के पालक, हे अप्रमेय, हे अनन्त गुणों वाले आप को बार-बार नमस्कार हो। ५। इस प्रकार प्रभावशाली, महेश्वर, महाविष्णु की स्तुति करके और दण्डवत् प्रणाम करके बोले और उन्हें बार-बार नमस्कार किया। ६। तब सनातन विष्णु ने प्रणाम करते हुए भृगु को उठाया और आनन्द के आंसुओं से भर कर उस मुनि को चूमा। ७। हे महेश्वरि, भृगु और विष्णु ने आपस में आलिङ्गन किया। उन के अङ्गों में आए हुए पसीने से उत्पन्न परम पवित्र जल से। ८। परिशीलवन परम पुण्य तीर्थ बन गया, चूंकि भृगु के आलिङ्गन से हरि के पसीने से यह तीर्थ बना। ९। हे

तस्माद् भृगुतीर्थं महेश्वरि। भृगुतीर्थे नरः स्नात्वा पुण्यं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥१०॥ भृगुतीर्थे महाविष्णोः स्वेदोद्भूते महेश्वरि। स्नात्वा पीत्वा प्रमुच्येत ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ॥११॥ श्राद्धं कृत्वा तीर्थवरे भृगोः परमपावने। पितरस्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः ॥१२॥ शुभे वै भार्गव-क्षेत्रे स्नात्वा पीत्वा च सुन्दरि। नरो न लिप्यते पापैः ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ॥१३॥ भूयोभूयः किमुक्तेन नरः पातकवान् कलौ। भृगुक्षेत्रं समासाद्य मुच्यते सर्वकिल्विषात् ॥१४॥ श्री भैरवी—भृगोः क्षेत्रस्य महात्म्यं श्रुत्वा प्रीतास्मि सुन्दर। परिशीलवने पुण्ये महापातकनाशनम् ॥१५॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि नीलगङ्गासमुद्भवम्। यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुः कोटिजन्मभवैरघैः ॥१६॥ श्रीभैरवः—शृणु देवि प्रवक्ष्यामि नीलगङ्गासमुद्भवम्। यच्छ्रुत्वा प्राप्यते मर्त्यैरग्निष्टोमफलं प्रिये ॥१७॥

महेश्वरि, इस कारण यह पुण्य तीर्थ भृगुतीर्थ नाम से सुविख्यात है। भृगुतीर्थ में स्नान कर के मनुष्य अत्युत्तम पुण्य को प्राप्त करता है। १०। हे महेश्वरि, महाविष्णु के पसीने से उत्पन्न भृगुतीर्थ में स्नान तथा जलपान कर के मनुष्य करोड़ों ब्रह्महत्या आदि से छूट जाता है। ११। भृगु के परमपावन तीर्थ श्रेष्ठ में श्राद्ध करने से पितर शत-कल्प-पर्यन्त तृप्ति को प्राप्त करते हैं, इस में कोई संशय नहीं है। १२। इस शुभ भार्गव क्षेत्र में, हे सुन्दरि, स्नान तथा जलपान कर के मनुष्य ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पापों से लिप्त नहीं होता। १३। बार बार क्या कहना है कलियुग में पापी मनुष्य भृगुक्षेत्र को पा कर सभी पापों से मुक्त हो जाता है। १४। श्री **भैरवी** बोली—हे सुन्दर, मैं भृगु के क्षेत्र का माहात्म्य सुन कर बहुत प्रसन्न हुई हूँ, जो कि पुण्य परिशीलवन में महापापों को नष्ट करने वाला है। १५। अब नीलगङ्गा के माहात्म्य को सुनना चाहती हूँ, जिसे सुन कर मनुष्य करोड़ों जन्मों के पापों से छूट जाता है। १६। श्री **भैरव** बोले—हे देवि, सुनो, मैं नीलगङ्गा से उत्पन्न (पुण्य को) कहता हूँ, जिसे सुन कर हे प्रिये, मनुष्य अग्निष्टोम के फल को प्राप्त करते

एकदा क्रीडतस्तस्य शिवस्य वरवर्णिनि । कालाञ्जनाक्तं वदनं समभूत्तस्य सुन्दरि ॥१८॥ कालाञ्जनाङ्कितं दृष्ट्वा मुखं देवस्य पार्वती । दर्शयामास वै तस्य ह्यादर्शं विमलं तदा ॥१९॥ दृष्ट्वाञ्जनाक्तं वदनं स्वं देवो भगवान् हरः । जटाभिरौत्तद् वदनं कालाञ्जनसमं प्रिये ॥२०॥ प्रक्षालयामास तदा वदनं गङ्गया शिवे । सैव गङ्गा समापन्ना कालाञ्जननिभाऽभवत् ॥२१॥ नीलगङ्गेति विख्याता सर्वपातकनाशिनी । नीलगङ्गां नरो दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२॥ नीलगङ्गामृदं चापि यो दद्यादङ्के स्वके । स याति ब्रह्म-सदनं यत्र गत्वा न शोचते ॥२३॥ नीलगङ्गानदीतीरे स्नात्वा मुच्येत किल्विषात् । नीलगङ्गां पुमान् प्राप्य नरो मुच्येत कल्मषात् ॥२४॥ तथा नीलजलं पुण्यं महापापप्रणाशनम् । नीलगङ्गानदीपुण्ये कालाञ्जनजले शुभे ॥२५॥ नरो न लिप्यते पापैः ब्रह्महत्यादिकोटिभिः । दत्त्वा स्नात्वा

हैं । १७ । हे वरवर्णिनि, एक बार क्रीडा करते हुए शिव जी का मुख काले सुर्मे से भर गया । १८ । हे सुन्दरि, काले अञ्जन से लिपे हुए उस देव को देख कर पार्वती ने उन्हें निर्मल आइना दिखाया । १९ । हे प्रिये, भगवान् शिव ने अपने मुंह को काले अञ्जन से लिपा हुआ देख कर उस काले अञ्जन के समान मुख को जटाओं से पोंछ डाला । २० । हे शिवे, तब उन्हों ने अपने मुख को गङ्गा से धो डाला, वही गङ्गा काले अञ्जन के समान बन गई । २१ । उस का नाम नीलगङ्गा नाम से प्रसिद्ध हो गया और वह सभी पापों का नाश कर देती है । नीलगङ्गा के दर्शन कर के मनुष्य सभी पापों से छूट जाता है । २२ । नीलगङ्गा की मिट्टी को जो व्यक्ति अपने अङ्गों में लगाता है । वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, जहां जा कर उसे शोक नहीं होता । २३ । नीलगङ्गा नदी के किनारे स्नान कर के मनुष्य पाप से छूट जाता है । नीलगङ्गा को प्राप्त कर के मनुष्य के मलिन भाव नहीं रहते । २४ । नीलगङ्गा का जल पुण्य देता है तथा महापापों को नष्ट करता है । नील-गङ्गा नदी के पुण्य और काले अञ्जन के समान शुभ जल में । २५ । मनुष्य

च विधिवन्नीलगङ्गाजले शुभे ॥२६॥ स याति शिवसायुज्यं यत्र गत्वा न शोचते । इति ते कथितं देवि माहात्म्यममरोत्तमे । भृगोः क्षेत्रस्य नीलाया महापातकनाशनम् ॥२७॥ इत्येष पटलो गुह्यो महापातकहा कलौ । श्रुतश्च पठितश्चापि त्रिमलघ्नः प्रकीर्तितः ॥२८॥

इति श्री भृङ्गीशसंहितायां भृगुतीर्थे नीलगङ्गामहिमानाम पञ्चमः पटलः ॥५॥

श्री भैरवः—शृणु देवि प्रवक्ष्यामि *स्थाण्वाश्रमवनं महत् । यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥१॥ पुरा चचार सुमहत्तपो हैमवते वने । गिरीशो दक्षतनुजा-विश्लेषिततनुर्हरः ॥२॥ दिव्यं वर्षसहस्रान्तं समाधिनिरतोऽभवत् । ततो वै पार्वती देवी हरसेवार्थमागता॥३॥

ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पापों से लिप्त नहीं होता । यदि नीलगङ्गा के शुभ जल में विधिवत् दान करता है तथा स्नान करता है । २६ । वह शिव की समीपता को प्राप्त करता है, जहां जा कर उसे शोक नहीं रहता । इस प्रकार हे अमरश्रेष्ठ देवि, मैं ने आप से भृगु के क्षेत्र में नील नदी का महात्म्य कह दिया है, जो कि महापापों को नष्ट करने वाला है । २७ । इस प्रकार कलियुग में महापापों को नष्ट करने वाला यह गुह्य पटल मैं ने कह दिया है जो कि सुनने और पढ़ने से कायिक वाचिक और मानसिक तीनों प्रकार के मलों को नष्ट कर देने वाला कहा गया है । २८ ।

भृङ्गीश संहिता में भृगुतीर्थ में नीलगङ्गा की महिमा नामक पांचवां पटल पूर्ण । ५ ।

श्री भैरव बोले—हे देवि सुनो, मैं तुम्हें स्थाण्वाश्रम के महावन के विषय में कहता हूँ, जिसे सुन कर प्राणी करोड़ों महापातकों से छूट जाता है । १ । दक्षतनया पार्वती के शरीर से जुड़े हुए (अर्धनारीश्वर) शिव ने पहले हिमालय के वन में बहुत बड़ा तप किया । २ । वह सहस्रों दिव्य वर्ष समाधि में निरत रहे, तब पार्वती देवी शिव की सेवा करने के लिए आई । ३ ।

---

* [illegible] 'थनीन' के नाम से प्रसिद्ध है ।

सैवापरा ह्यभूत्तत्र चिरं देवी महेश्वरी । स्थाणुवत् संस्थितो यत्र महेश-स्तपसि स्थितः ॥४॥ स्थाण्वाश्रमस्ततः प्रोक्तो महापातकनाशनः । स्थाण्वा-श्रमसमीपे तु यः स्नायात् सुर-वन्दिते ॥५॥ स यांति शिवसालोक्यं यत्र गत्वा न शोचते । स्थाण्वाश्रमे तु यो देवि श्राद्धं कुर्याद् विधानतः । पितरस्तृप्तिमायान्ति शतकल्पं न संशयः ॥६॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्यपपातकैः । स्थाण्वाश्रमवने पुण्ये मुच्यते नात्र संशयः ॥७॥ गवां कोटिसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् । तत्फलं कोटिगुणितं स्नात्वा स्था-ण्वाश्रमे जले ॥८॥ कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे । स्नात्वा यत्फल-माप्नोति तत्स्थाणोर्दर्शनात् प्रिये ॥९॥ स्थाण्वाश्रमसमीपे तु स्नानं कृत्वा विधानतः । अश्वमेधमवाप्नोति वाजपेयं च मानवः ॥१०॥ गां हिरण्यं च

वही महेश्वरी देवी ही वहां पर बहुत समय तक दूसरी थी, जहां पर कि महादेव स्थाणु की भांति स्थिर हो कर तपस्या में स्थित थे । ४ । तभी से वह आश्रम महापापों को नष्ट करने वाला स्थाण्वाश्रम कहा जाता है । देवताओं से वन्दित इस स्थाण्वाश्रम के समीप में जो कोई स्नान करता है । ५ । वह शिव के समान लोक को प्राप्त करता है जहां जा कर वह शोक को प्राप्त नहीं करता । स्थाण्वाश्रम में हे देवि, जो व्यक्ति विधान से श्राद्ध करता है, उस के पितर सौ कल्प तक तृप्ति को प्राप्त करते हैं, इस में कोई संशय नहीं है । ६ । महापातकों अथवा उपपातकों से भी यदि वह युक्त हो तो पुण्य स्थाण्वाश्रम के इस वन में मुक्त हो जाता है, इस में कोई संशय नहीं है । भली प्रकार यदि हज़ार करोड़ गौएं दान की जावें तो उन का जो फल होता है, वह फल स्थाण्वाश्रम के जल में स्नान करने से होता है । ८ । कुरुक्षेत्र में अथवा प्रयाग में स्नान से जो फल प्राप्त होता है । वही फल हे प्रिये स्थाणु के आश्रम के दर्शन से होता है । ९ । स्थाण्वाश्रम के निकट विधान से स्नान करके मनुष्य अश्वमेध और वाजपेय के फल को प्राप्त करता है । १० । हे महेश्वरि, स्थाणु के आश्रम में गौ, सोना, रेशमी वस्त्र अथवा

क्षौमं च तिलप्रस्थं महेश्वरि । दत्त्वा स्थाणोराश्रमे च परमं पुण्यमाप्नुयात् ॥११॥ स्थाण्वाश्रमसमीपे तु स्नात्वा पीत्वा च सुन्दरि । नरो न लिप्यते पापैः पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१२॥ देवतार्चनमत्र कुर्वंस्तर्पणं च तथा प्रिये । जपंश्च मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः ॥१३॥ स्थाण्वाश्रमे नरो भक्त्या कुर्वन् वै किल्विषार्दनम् । न करोति महास्नानं दानं वा जगदम्बिके ॥१४॥ स यात नरकं घोरं जन्मजन्मनि पातकी । स्थाण्वाश्रमे नरो भक्त्या सन्ध्यातर्पणमाचरेत् ॥१५॥ सन्ध्या कोटिगुणा प्रोक्ता तर्पणं स्यादनन्तकम् । गवां कोटिसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥१६॥ तत्फलं समवाप्नोति स्थाणोराश्रमदर्शनात् । श्री भैरवी—अधुना श्रोतुमिच्छामि माहात्म्यं परमुत्तमम् ! पेषणाख्यस्य च गिरेस्तन्मे कथय सुव्रत ॥१७॥ श्री भैरवः—राक्षसाश्च पुरा देवी (वि?) दर्शनार्थमुपागताः । देवैस्सार्धं च

तिल का सेर भर दान करके मनुष्य परम पुण्य को प्राप्त करता है ।११। हे सुन्दरि, स्थाणु के आश्रम में स्नान करके और जलपान करके मनुष्य पापों से लिप्त नहीं होता, जैसे कि जल से कमलपत्र लिप्त नहीं होता ।१२। यहां पर देवताओं के अर्चन और तर्पण को करता हुआ तथा जप करता हुआ प्राणी करोड़ों महापापों से मुक्त हो जाता है ।१३। पापों को करता हुआ जो मनुष्य स्थाण्वाश्रम में भक्ति से महास्नान नहीं करता या दान नहीं करता ।१४। हे जगदम्बिके, वह घोर नरक को प्राप्त करता है और हर जन्म में पापी बनता है । स्थाण्वाश्रम में मनुष्य भक्ति से सन्ध्या और तर्पण करे ।१५। वहां पर सन्ध्या करोड़ गुणा कही गई है और तर्पण अनन्तगुण हो जाता है । भली प्रकार दान की हुई हज़ार करोड़ गौओं का जो फल है । वही फल स्थाणु के इस आश्रम का दर्शन करने से प्राप्त होता है ।१६। **श्री भैरवी बोली**—हे सुव्रत, अब मैं पेषण नाम के गिरि का माहात्म्य सुनना चाहती हूं, जो कि परम उत्तम है, अब आप मुझे वह सुनाएं ।१७। **श्री भैरव बोले**—हे देवि पहले राक्षस वहां पर दर्शन करने के लिये आये । स्थाण्वाश्रम के पास वह देवताओं के साथ

मिलिताः स्थाएवाश्रमसमीपतः ॥१८॥ वयं पूर्वं वयं पूर्वमित्येवं स्पर्धया पुरा। कलहं चक्रिरेऽन्योन्यं गताश्च सुरसत्तमाः ॥१९॥ युद्धं च चक्रिरे-ऽन्योन्यं भुजाभुजि महेश्वरि। गिर्यारोहणकाले तु दैत्याः पिष्टाः सुरोत्तमैः ॥२०॥ पिष्टा दैत्यास्तत्र गिरौ लीनास्तत्रैव सुन्दरि। दैत्यान् पिष्टान् देवगणा वीक्ष्य हर्षमुपाययुः ॥२१॥ यस्मिन् गिरौ देवगणैर्दैत्याः पिष्टाः समन्ततः। स गिरिः परमोदारः पेषाख्यः प्रथितोभुवि ॥२२॥ पिनष्टि यत्र पापानि नरो नियतमानसः। ततः प्रोक्तः पुराविद्भिः पेषाख्यो गिरिरुत्तमः ॥२३॥ कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे। स्नात्वा यत्फल-माप्नोति तत्पेषस्य च दर्शनात् ॥२४॥ गिरेरारोहणे देवि यावन्तो रेणुविन्दवः। तावन्ति वाजपेयानि प्राप्नोत्येव न संशयः ॥२५॥ नैमिषे च प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे। स्नात्वा यत्फलमाप्नोति तत्पेषस्य च

मिल गए। १८। 'हम पहिले,' 'हम पहिले'-यह उन में होड़ लग गई, आपस में उनकी इस प्रकार कलह लग गई, देवता चले गये। १६। आपस में एक दूसरे के साथ बाहु-युद्ध होने लगा। हे महेश्वरि, पहाड़ पर चढ़ने के समय में देव-श्रेष्ठों ने दैत्यों को पीस डाला। २०। हे सुन्दरि, पिसे हुए दैत्य उसी पहाड़ में छिप गए। पिसे हुए दैत्यों को देख कर देवता प्रसन्न हो गये। २१। जिस पहाड़ में देवताओं ने चारों ओर से दैत्यों को पीस डाला, वह परम उदार पर्वत पृथ्वी पर पेष नाम से प्रख्यात हुआ। २२। मनुष्य जहां इस पर नियमित मन वाला होकर पापों को पीसता है अतः वह उत्तमगिरि पुरातत्त्ववेत्ताओं ने पेष नाम से प्रसिद्ध किया है। २३। कुरुक्षेत्र, प्रयाग और गङ्गासागर के सङ्गम में स्नान करने से मनुष्य जो फल प्राप्त करता है वही फल पेष के दर्शन से प्राप्त करता है। २४। हे देवि, पर्वत के चढ़ने में मनुष्य के जितने रेणु (धूलिकण) या बून्दें पड़ती हैं, वह उतने बाजपेयों को प्राप्त करता है इस में कोई संशय नहीं है। २५। नैमिष में, प्रयाग में और गङ्गासागर के सङ्गम में स्नान करके मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वही पेष के दर्शन से प्राप्त करता है। २६। वाराणसी

दर्शनात् ॥२६॥ वाराणस्याः शतगुणं सहस्रं कुरुजाङ्गलात् । लक्षं च मानसक्षेत्रात् पेषाख्यो गिरिरुच्यते ॥२७॥ आरोढुमिच्छते यस्तु गिरौ देवि समाहितः । स ब्रह्मभुवनं याति यत्र गत्वा न शोचते ॥२८॥ महान्ति मेरुतुल्यानि पापानि यदि सुन्दरि । तान्यस्य दर्शनादेव नाशमायान्ति तत्क्षणात् ॥२६॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः । स याति भैरवं देवं यत्र नास्ति कृताकृतम् ॥३०॥ विधिना यो नरो देवि पेषमारोहते नरः । पापसङ्घान् स पिष्ट्वा तु पदं सादाशिवं व्रजेत् ॥३१॥ पेषदर्शनमात्रेण नरो याति परं पदम् । नमस्करोति देवेशि पुण्यं पेषगिरिं तु यः ॥३२॥ स याति परमं ब्रह्म यत्र गत्वा न शोचते । बहुनात्र किमुक्तेन कलौ पेषगिरिं नरः । आरुह्य मुक्तिमाप्नोति सत्यं सत्यं न संशयः ॥३३॥ इति प्रोक्तो मया देवि पेषस्य महिमा परः । श्रुतोऽनु-

के (पुण्य) से सौ गुना, कुरुजाङ्गुल से हज़ार गुणा तथा मानसक्षेत्र से लाख गुणा पेषपर्वत का पुण्य है । २७ । हे देवि, जो समाधि में स्थित होकर पहाड़ पर चढ़ना चाहता है वह उस ब्रह्म भुवन को प्राप्त करता है, जहां जाकर उसे शोक नहीं होता । २८ । हे सुन्दरि, यदि मेरु-पर्वत के तुल्य भी बड़े-बड़े पाप हों तो वह इस पेष के दर्शन से उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं । २६ । महापातकों या उपपातकों से युक्त हो वह भी भैरव-देव को प्राप्त करता है, जहां पर कि कृत अथवा अकृत कुछ नहीं रहता । ३० । हे देवि, जो मनुष्य विधिपूर्वक पेषपर्वत पर चढ़ता है, वह पापसंघों को पीस कर सदा शिव के पद को प्राप्त करेगा । ३१ । पेष के देखने मात्र से ही मनुष्य परमपद को प्राप्त करता है। हे देवेशि, जो मनुष्य पेषगिरि को नमस्कार करता है । ३२ । वह परम ब्रह्म को प्राप्त करता है, जहां जाकर शोक को प्राप्त नहीं होता । इस विषय में बहुत क्या कहना है, कलियुग में जो मनुष्य पेषगिरि (पिस्सू घाटी) पर चढ़ता है, वह मुक्ति को प्राप्त करता है, इस में परम सत्य है, जरा भी संशय नहीं है । ३३ । हे देवि, इस प्रकार मैं ने पेष पर्वत की परम महिमा कही है । इस को सुनना,

ध्यातः पठितो महापातकनाशनः ॥३४॥ इत्येष पटलो गुह्यः प्रोक्तस्तव वरानने। श्रुतश्च पठितश्चापि ज्योतिष्टोमादियज्ञदः ॥३५॥

इति श्री भृङ्गीशसंहितायां स्थाण्वाश्रमपेषमहिमावर्णनं नाम षष्ठः पटलः ॥६॥

श्री भैरवी—श्रुत्वा भवन्मुखाद्देव महिमानमनुत्तमम्। नागस्य पिशिताख्यस्य (पेषिताख्यस्य) दैत्यास्थिप्रभवस्य च ॥१॥ कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि न संशयः। अधुना श्रोतुमिच्छामि नागस्यापि महेश्वर। प्रभावं च समुत्पत्तिं कथयस्व प्रसादतः ॥२॥ श्री भैरवः—शृणु सुश्रोणि वक्ष्यामि शेषस्य नागरूपिणः। माहात्म्यं च प्रभूतिं च सर्व-पापप्रणाशनम् ॥३॥ पुरा कृतयुगे देवि स्थानं चक्रुर्हिमालये। शिखरे वै महापुण्ये चामरेश्वरसन्निधौ ॥४॥ पूजार्थं दर्शनार्थं च तपोऽर्थं सुर-सुन्दरि। त्रिदशाः सिद्धगन्धर्वा देवयोनिसमन्विताः ॥५॥ एतस्मिन्नन्तरे

ध्यान करना या पढ़ना महापापों को नष्ट करता है। ३४। इस प्रकार यह गुप्त पटल हे वरानने, मैं ने तुम्हें कहा है, जिसे सुनने और पढ़ने से ज्योतिष्टोमादि यज्ञों का फल प्राप्त होता है। ३५।

श्री भृङ्गीशसंहिता में स्थाण्वाश्रम और पेष की महिमा नामक छठा पटल पूर्ण। ६।

श्री भैरवी बोली—हे देव, आप के मुख से पेषित नाम के पर्वत की जो कि दैत्यों की अस्थियों से उत्पन्न हुआ है—अतिश्रेष्ठ महिमा को सुन कर। १। मैं कृतार्थ हो गई हूँ, कृतार्थ हो गई हूँ, कृतार्थ हो गई हूँ—इस में कोई संशय नहीं है। अब हे महेश्वर, शेषनाग पर्वत के प्रभाव तथा उत्पत्ति को भी सुनना चाहती हूं, आप कृपा करके बताएं। २। **श्री भैरव बोले**—हे सुन्दरि, मैं नागरूपी शेष के माहात्म्य और प्रभाव को जो कि सभी पापों को नष्ट करने वाला है, कहता हूँ। ३। पहले कभी कृतयुग में अमरेश्वर के समीपवर्ती हिमालय के महापुण्य शिखर में पूजा, दर्शन और तप के लिए देवयोनियों समेत देवता, सिद्ध और गन्धर्व इकट्ठे हुए और उन्हों ने स्थान

कश्चिद् वातरूपधरो बली। दैत्येन्द्रोऽभून्महावीर्यस्तपोगर्वेण गर्वितः।
अत्रस्थान् सगृहान् देवान् पीडयामास शक्तितः ॥६॥ ततो देवाः सहेन्द्रेण
शरणं परमेश्वरम्। निकटस्थं समाजग्मुः स्तुत्याभिः पर्यतोषयन् ॥७॥
देवा ऊचुः—नमस्ते देवदेवाय शम्भवे परमात्मने। जगत्-स्थितिविना-
शानां हेतुभूताय वै नमः ॥८॥ त्वं माता सर्वभूतानां त्वमेव जगतां पिता।
त्वं सुहृद्बन्धुरेवासि त्वत्तो नान्यज् जगत्त्रये ॥९॥ अनाथानां तु नाथ-
स्त्वमगतीनां गतिस्तथा। आर्त्तानामार्त्तिहा त्वं च त्वामेव शरणं श्रये॥१०॥
इतिश्रुत्वा महादेवः प्रादुरासीद् दयानिधिः। उवाच श्लक्ष्णया वाचा
देवानां दुःखभाजिनाम् ॥११॥ सर्वं श्रुतं मया देवा दैत्येन्द्रस्य महा-
त्मनः। मया संवर्धितो दैत्यश्छेत्तुं नार्होऽसुराधिपः ॥१२॥ तस्माद् व्रज-
ध्वं शरणं शरणार्तिविनाशनम्। भगवन्तं चतुर्बाहुं शङ्ख-चक्र-गदा-

बनाया। ५। इस बीच में कोई बली और महावीर्य दैत्यराज वायु का रूप धारण कर तपस्या के गर्व से गर्वित हो गया। और यहां पर ठहरे हुए घर सहित देवताओं को अपनी शक्ति से पीड़ित करने लगा। ६। तब इन्द्र के समेत देवता निकट स्थित परमेश्वर (अमरनाथ) जी की शरण में गए और उन्हें स्तुतियों से प्रसन्न करने लगे। ७। देवता बोले—देवों के देव परमात्मा शम्भु को नमस्कार हो, सृष्टि स्थिति तथा नाश के कारण भूत आप को नमस्कार हो। ८। तुम सभी भूतों के निर्माता हो. तुम सारे संसार के पिता हो, तुम सब के सुहृद् हो, सब के बन्धु हो, तीनों लोकों में तुम से भिन्न और कुछ नहीं है। ९। तुम अनाथों के नाथ हो और अशरणों के शरण हो। तुम पीडितों की पीड़ा दूर करते हो, मैं आप की शरण का सहारा लेता हूं। १०। यह सुनकर दयानिधान महादेव प्रकट हो गए और दुःखी हो रहे देवताओं को बड़ी मधुर वाणी से बोले। ११। हे देव, मैं ने महात्मा दैत्यराज का सब कुछ सुन लिया है, यह दैत्य मैं ने ही बढ़ाया है अतः इस असुरराज को मारना उचित नहीं। १२। इस कारण शरण पड़ों की पीड़ा को नष्ट करने वाले,

धरम् ॥१३॥ क्षीरसागरमध्यस्थं शेषशायिनमेव च । इति विसृज्य तान् देवानन्तर्धिं प्राप्तवान् हरः ॥१४॥ ततो देवगणाः सर्वे हर्षसंपूर्णमानसाः। क्षीराब्धिं प्राप्य संतुष्टास्तुष्टुवुर्जगतां पतिम् ॥१५॥ देवा ऊचुः— नमोनमो ह्यनन्ताय रूपातीताय वै नमः। नमः सर्वस्वरूपाय सर्वातीताय वै नमः ॥१६॥ सर्वेशाय च सर्वाय सर्वगाय च ते नमः। वेदाय वेदरूपाय वेदगम्याय ते नमः ॥१७॥ ध्यानाय ध्यानगम्याय ध्यानातीताय वै नमः। जगत्कर्त्रे नमस्तुभ्यं जगद्धर्त्रे च वै नमः ॥१८॥ जगत्पालनसंसक्तचित्ताय चित्स्वरूपिणे। एवं स्तुतस्तु देवेशः प्रसन्नोऽभूद्दयापरः ॥१९॥ उवाच वचनं देवान् सर्वदुःखनिवारणम्। गच्छध्वं देवदेवेशा नाकं शोकहरं परम् ॥२०॥ तं दुष्टं सकुलं हन्मि वातरूपं दुरासदम्। इत्युक्त्वान्त-

---

चार भुजाओं युक्त, शङ्ख, चक्र, गदा धारण किए हुए भगवान् की शरण में जाओ। १३। जो क्षीरसागर के बीच में स्थित हैं और शेषनाग पर सो रहे हैं। इस प्रकार उन देवताओं को विदा कर भगवान् शिव अन्तर्धान हो गए। १४। तब हर्ष से भरे हुए मन वाले सभी देवता क्षीरसागर को प्राप्त हो कर प्रसन्नता से जगत् के पति की स्तुति करने लगे। १५। देवता बोले— अनन्त को नमस्कार हो, रूपहीन को नमस्कार हो, सर्वस्वरूप को नमस्कार हो और सर्वागोचर को नमस्कार हो। १६। हे सर्वेश, सर्व और सर्वज्ञ आप को नमस्कार हो, हे वेद, वेद रूप और वेदगम्य आप को नमस्कार हो।१७। हे ध्यान, ध्यानगम्य और ध्यान से अतीत आप को नमस्कार हो, हे जगत् के कर्ता और हर्ता आप को नमस्कार हो। १८। हे जगत् के पालन में लगे चित्त वाले, चित्स्वरूप आप को नमस्कार हो, इस प्रकार स्तुति किए जाने पर दयालु देवेश प्रसन्न हो गए। १९। और सभी दुःखों को निवारण करने वाला वचन देवताओं से बोले कि देवताओ, आप शोक दूर करने वाले स्वर्गलोक को जाओ। २०। वायु का रूप धारण किए हुए उस दुष्ट और दुष्प्राप्य दैत्य को मैं कुल समेत नष्ट कर देता हूँ। यह कह कर भक्तों की पीड़ा को दूर करने

र्दधे विष्णुर्भक्तानामार्तिनाशकृत् । ॥२१॥ पातालाद् गिरिराजे वै प्रादुर्भूतो जगत्प्रभुः । शेषारूढश्चतुर्बाहुः सलक्ष्मीकोऽपि सायुधः ॥२२॥ आज्ञापयामास तदा शेषं शतफणान्वितम् । वातं पिब फणीन्द्र त्वं सहस्रवदनैर्द्रुतम् । प्राणांस्तर्पय नागेश यतस्त्वं पवनाशनः ॥२३॥ एवं श्रुत्वा भगवतो वचनममृतोपमम् । सोऽनन्तस्त्वरया दैत्यं वायुरूपं पपौ क्षणात् ॥२४॥ पुनर्वातस्य शेषो वै ह्यभवद् गिरिमस्तके । पुनश्च वसतिं चक्रे नगे परमपावने ॥२५॥ तदाप्रभृति ते देवा निर्विघ्ना अभवञ्छिवे । पुनः प्रोवाच भगवाञ्शेषं तं पवनाशनम् ॥२६॥ अत्र तिष्ठ फणीन्द्र त्वं भयं नाशय वातजम् । तदा प्रभृति देवेशि नागोऽभूच्छेषसंज्ञकः ॥२७॥ शोभान्विताभिधो नागो वर्णितो योगिसत्तमैः । यत्र स्नात्वा शिवं यान्ति सुखेन मनुजाः प्रिये ॥२८॥ आश्रमेनाप्नुयुर्लोकान् देवानां सुरपूजिते ।

वाले विष्णु अन्तर्धान हो गए । २१ । पाताल से जगत् के प्रभु शेष पर सवार हो कर पर्वतराज पर प्रकट हुए, लक्ष्मी भी उनके साथ थीं और आयुध भी साथ थे । २२ । तब सौ फणों से युक्त शेषनाग को उन्होंने आज्ञा दी कि हे नागराज, तुम अपने सहस्रों मुखों से शीघ्र ही वायु को पी जाओ, हे नागेश तुम प्राणों को तृप्त करो क्योंकि तुम वायुभक्षी हो । २३ । भगवान् के ऐसे अमृत के सामान वचन सुन कर वह अनन्त जल्दी से वायुरुपी उस दैत्य को एक क्षण में पी गया ।२४। तब भी पर्वत पर वायु शेष रह गई । अतः परम-पवित्र उस पर्वत पर उसने निवास कर लिया ।२५। हे शिवे, तब से लेकर वह देवता निर्विघ्न हो गए और पवनभक्षी शेषनाग से भगवान् बोले ।२६। हे नागराज, तुम यहां रहो और वायु से उत्पन्न भय को नष्ट कर दो । तब से लेकर हे देवेशि, यह पर्वत शेषनाम से प्रसिद्ध हो गया । २७ । योगिराजों ने शोभायुक्त नामक नाग का वर्णन किया है, हे प्रिये, जहां पर स्नान करके मनुष्य सुख से शिव को प्राप्त करते हैं ।२८। हे सुरपजिते, देवताओं के लोकों को चूंकि आश्रम से प्राप्त करते हैं, यहां पर संसार सुखपूर्वक आप्लुत है, अतः

सुखेनात्राप्नुतो लोकस्तस्मान्नागोऽत्र स्वश्रयः ॥२६॥ स्वाश्रमोऽपि बुधैः प्रोक्तो नागराजोऽपि सुन्दरि। यस्मात् सुखेन लब्धो वै स्वाश्रमस्त्रिदिवेश्वरैः ॥३०॥ अत्र दर्शनमात्रेण मुच्यते पापराशिकृत्। दर्शनात् स्पर्शनात् स्नानाद् दानहोमाज्जपात्तथा ॥३१॥ स्वाध्यायात् स्तुतिपाठाच्च ह्यनन्तं पुण्यमाप्नुयात्। कमलापूजनाद् यत्र स्थिरां प्राप्नोति चेन्दिराम् ॥३२॥ स्मरणादपि देवेशि मुच्यते पापसंचयैः। बहुनात्र किमुक्तेन नागराजस्य सुन्दरि ॥३३॥ ब्रह्महा मुच्यते सद्यो दानात् पानाज्जलस्य वै। वायुवर्जनतीर्थे तु स्नात्वा दत्त्वा शिवं व्रजेत् ॥३४॥ वायुवर्जनमार्गेण गतो याति परं पदम्। महागोनसनामानमारुहेत् पर्वतं तथा। यत्रारोहणमात्रेण न गच्छेद् यममन्दिरम् ॥३५॥ इत्येष पटलो गुह्यो मया तेऽद्य प्रकाशितः। श्रुतो वा पठितो वाऽपि शिवसायुज्यदः परः ॥३६॥

इति श्रीभृङ्गीशसंहितायां सुश्रमनागमहिमानाम सप्तमः पटलः ॥७॥

यहां पर नाग ने स्वयं आश्रय लिया है ।२६। विद्वानों ने इसे अच्छा आश्रम भी कहा है और हे सुन्दरि नागराज भी कहा है, चूंकि देवताओं ने स्वाश्रम को सुख से पाया है ।३०। यहां पर दर्शनमात्र से ही पाप राशि को करने वाला छूट जाता है। मनुष्य दर्शन से, स्पर्श से, स्नान से, दान से, होम से और जप से ।३१। स्वाध्याय से, स्तुतिपाठ से अनन्त पुण्य को प्राप्त करेगा। कमला के पूजन से यहां पर स्थिर लक्ष्मी को प्राप्त करता है ।३२। हे देवेशि, स्मरण से भी पापसञ्चय से मुक्त हो जाता है। हे सुन्दरि, नागराज के विषय में यहां बहुत क्या कहें ।३३। ब्रह्महत्या करने वाला यहां पर दान से और जल के पान से झट मोक्ष पाता है, वायु वर्जन (वावजन) के तीर्थ में स्नान कर के तथा दान कर के शिव को प्राप्त करेगा ।३४। वायु-वर्जन (वावजन) के रास्ते से चलने पर परम पद को प्राप्त करता है। तब महागोनस नाम पर्वत पर चढ़े। जहां चढ़ने मात्र से ही यम के मन्दिर से छूट जाते ।३५। यह गुह्यपटल मैं ने

श्री भैरवी—पेषो गिरिर्मया देव श्रुतो भवदनुग्रहात्। अधुना श्रोतुमिच्छामि तीर्थं वै वायुवर्जनम् ॥१॥ किमर्थं मठिकां तत्र कुर्वते प्रस्तरैः शुभैः। वद मे कृपया शम्भो तत्र तीर्थे च किं फलम् ॥२॥ श्री भैरवः—देवैस्तु पिष्टान् दैत्यांस्तु पृषतो नाम दानवः। श्रुत्वा समीरणो भूतो बबाधे देवतास्तदा। ॥३॥ वायुना परिभूतास्ते देवास्तं शरणं गताः। भवं देवं महादेवं तुष्टुवुः परया गिरा ॥४॥ देवा ऊचुः—नमो देवाधिदेवाय शर्वाय शम्भवे भवे (?)। आदिमध्यान्तशून्याय पराय प्रभवे नमः ॥५॥ नमो भैरवरूपाय भीमाय भयनाशिने। भयानकाय देवाय मुञ्जमेखलिने नमः ॥६॥ नमोऽमृतस्वरूपाय मृत्युमृत्युविनाशिने। कलानिधि विभूषाय कालरूपाय ते नमः ॥७॥ सदाशान्ताय देवाय श्वेतदे-

---

आज तुम्हें प्रकाशित कर दिया है। इस के सुनने या पढ़ने से शिव की परम समीपता प्राप्त हो जाती है ।३६।

श्री भृङ्गीशसंहिता में सुश्रमनागमहिमा नामकसातवां पटलं पूर्ण ।७।

श्री भैरवी बोली—हे देव, मैं ने आपकी कृपा से पेष पर्वत की महिमा सुनी, अब मैं वावजन तीर्थ सुनना चाहती हूं। १। वहां पर लोग अच्छे पत्थरों से मढी क्यों बनाते हैं। हे शम्भो, कृपा कर के बताएं कि उस तीर्थ में क्या फल है ?। २। श्री भैरव बोले—जब पृषत् नामक दैत्य ने सुना कि दैत्यों को देवताओं ने पीस डाला है, तो यह सुन कर उस ने वायु का रूप धारण किया और देवताओं को बाधा पहुँचानी आरम्भ कर दी । ३ । वह देवता वायु से तिरस्कार प्राप्त कर के उस महादेव भवदेव की शरण में गए और उन की उत्तम वाणी से स्तुति करने लगे । ४। देवता बोले—भवरूप शम्भु देवाधिदेव शर्व को नमस्कार हो। जो कि आदि, मध्य और अन्त से हीन हैं तथा परम प्रभु हैं। ५। भैरवरूप, भयङ्कर और भय का नाश करने वाले, भयानक, मुञ्ज की मेखला वाले देव को नमस्कार हो । ६। अमृतस्वरूप, मृत्यु की मृत्यु का नाश करने वाले, चन्द्र के आभूषण से विभूषित कालरूप आप

हाय ते नमः । अमरेशाय देवाय भूयोभूयो नुमो वयम् ॥८॥ इति श्रुत्वा स्तुतिं प्रीत्या कृतां परमदैवतैः । जगाद भगवान् भूयो देवान् परमया मुदा ॥९॥ श्री भगवानुवाच—श्रुतं मया पूर्वमेव बाधनं दानवस्य वै । अत्रैव मठिकां कृत्वा तिष्ठध्वमविशङ्कया । मठिकासु च देवेशाः कुरुध्वं वायुवर्जनम् ॥१०॥ इत्थं श्रुत्वा ततो देवा मठिकास्तत्र प्रस्तरैः । स्थितास्तत्रैव देवेशि मठिकासु सुविस्मिताः ॥११॥ वायुः शशाम सुमहान् दैत्यः परमदारुणः । दर्शयामास तदुग्रं रूपं दैत्यः पुरन्दरम् ॥१२॥ दृष्ट्वा दैत्यमुग्ररूपमिन्द्रो वज्रं समादधे । अहनद् दानवं देवस्तत्रैव वायुवर्जने ॥१३॥ यस्माच्छशाम सुमहान् वायुरूपश्च दानवः । तस्मात्प्रोक्तं पुराविद्भिस्तीर्थं वै वायुवर्जनम् ॥१४॥ स्नानं दानमर्चनं च कृत्वा वै वायुवर्जने । अनन्तं पुण्यमाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ॥१५॥ महापातक-

---

को नमस्कार हो । ७ । श्वेत देह वाले सदाशान्त देव आपको नमस्कार हो, अमरेश देव को हम बार बार नमस्कार करते हैं । ८ । इस प्रकार देवताओं से की गई परम स्तुति को सुन कर भगवान् पुनः देवताओं को परम प्रसन्नता से कहने लगे । ६ । श्रीभगवान् बोले—मैं ने दानव की बाधा को पहले ही सुन रखा है । आप यहीं पर मठिका बना कर निःशङ्क हो कर रहो । मठिकाओं में बैठे आप सब देवता वायु से बचे रहो । १० । इस प्रकार सुनकर वह देवता वहीं पत्थरों की मठिका बना कर रह गए, हे देवेशि, तब वह विस्मित थे । ११ । तब वह महान् दैत्य वायु रूप में शान्त हो गया, परन्तु उस दैत्य ने वह अपना उग्र रूप पुरन्दर (इन्द्र) को दिखाया । १२ । उग्ररूप वाले दैत्य को देखकर इन्द्र ने वज्र संभाल लिया । वहीं पर वायुवर्जन में उस दानव को इन्द्र देव ने मार डाला । १३ । चूंकि वहां पर वायुरूपी महान् दानव शान्त हो गया था । इस कारण पुरावेत्ताओं ने उस तीर्थ को वायुवर्जन नाम दिया है । १४ । वायुवर्जन (वावजन) में स्नान, दान तथा पूजन करके हे सुन्दरि, अनन्त पुण्य को प्राप्त होता है इसमें पक्का सत्य है । १५ । चाहे

युक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः। मुच्यते पातकैर्घोरैर्दृष्ट्वा वै वायुवर्जनम् ॥१६॥ वायुवर्जनदेशे तु स्नात्वा पीत्वा च सुन्दरि। नरो न लिप्यते पापैर्महापातकजैरपि ॥१७॥ स्नानं कृत्वा च दत्त्वा च तिलान्नमपि सुन्दरि। अनन्तं फलमाप्नोति पुण्ये वै वायुवर्जने ॥१८॥ यो न कुर्यान्महादेवि स्नानं दानं जपं हविः। स याति नरकं घोरं तत्तीर्थं तस्य निष्फलम् ॥१९॥ इति ते कथितं देवि तीर्थं वै वायुवर्जनम्। श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत महापातकपञ्जरात् ॥२०॥ श्री भैरवी—वद सत्यं महादेव शुष्कं वै सर उत्तमम्। सरोवरं कथं देव शुष्कीभूतमभूत् किल ॥२१॥ श्रीभैरवः—शृणु सुश्रोणि वक्ष्येऽहं शुष्कीभूतं सरोवरम्। येन विज्ञातमात्रेण नरो मुच्येदसंशयम् ॥२२॥ हतशेषाणि रक्षांसि तिरोभूतानि वै ह्रदे। तस्मिन्नेव पुरा देवि देवांस्ते वै बबाधिरे ॥२३॥ कुर्व-

---

वह जन महापातकों से युक्त हो, वायुवर्जन के दर्शन कर के उन सब से छूट जाता है। १६। हे सुन्दरि, वायुवर्जन के देश में स्नान करके तथा जलपान कर के मनुष्य महापातकों से उत्पन्न पापों से भी लिप्त नहीं होता। १७। हे सुन्दरि, वहां पर स्नान कर के, तथा तिल के अन्न का दान कर के पुण्य वायुवर्जन में अनन्त पुण्य को प्राप्त करता है। १८। हे महादेवि वहां पर स्नान, दान, जप और हविः को जो नहीं करता, वह तीर्थ उस के लिए निष्फल होता है। १९। हे देवि, इस प्रकार हम ने तुम्हारे लिए वायुवर्जन तीर्थ कहा है, इसे सुन कर या पढ़ करके मनुष्य महापापों के पिञ्जरे से छूट जाता है। २०। श्री भैरवी बोली—हे महादेव, सत्य कहें कि वह उत्तम सरोवर सूख गया,? हे देव, वह सरोवर कैसे सूख गया?। २१। श्री भैरव बोले—हे सुश्रोणि, सुनो, मैं कहता हूँ कि वह सरोवर (कैसे) सूख गया। जिसके जानने मात्र से मनुष्य निश्चित ही छूट जाता है। २२। मरने से बचे हुए राक्षस उसी सरोवर में जा छिपे और वहीं पर हे देवि, वह उन देवताओं को बाधा पहुँचाने लगे। २३। वह चारों ओर से मुनिसमूहों के लिए विघ्न करते थे।

न्ते (?) मुनिसङ्घानां विघ्नांश्चैव समन्ततः। एकदा तत्र तौ देवि स्वेच्छया ह्यागतौ तदा ॥२४॥ वीक्ष्य प्रबाधितान् देवान् राक्षसैः परमेश्वरौ। मुनीन् परमकारुण्यान् देवी देवमुवाच ह ॥२५॥ दयालो परमेशान पश्यैतान् मुनिसत्तमान्। विघ्नितान् राक्षसौघैश्च पीडितानपि शङ्कर॥२६॥ श्रुत्वा देविवचः सोपि नन्दी तान् ऋषिसत्तमान्। वीक्ष्य विघ्नीकृतान् देवि हुङ्कारमकरोत्तदा ॥२७॥ हुङ्काराभिहता दैत्या मग्नास्ते तु सरोवरे। मग्नान् दृष्ट्वा ततो देवी शशाप सर उत्तमम् ॥२८॥ मुनिविघ्नकरान् यस्माद्रक्षसे दैत्यदानवान्। शुष्कीभव सरस्तस्माद्धव्यकव्यविवर्जितम् ॥२९॥ इति शप्तं सरो दिव्यं सद्यः शुष्कमभूत् किल। शुष्कीभूतात्तु सरसो निर्गतं रक्षसां गणम् ॥३०॥ नाशयाम स्वगणैः पाशमुद्गरपाणिभिः। तदाप्रभृति देवेशि नष्टं शुष्कं सरोऽभवत् ॥३१॥ शेषो रक्षोगणो यस्माद् याति विघ्नकरः प्रिये। तस्मान्मौनेन च व्रजेत्तत्स्थाने जगदम्बिके ॥३२॥

हे देवि, एक बार वहां पर वह (पार्वती और परमेश्वर) स्वतः ही आ गए। २४। दोनों परमेश्वर रूपों ने राक्षसों से पीड़ित देवताओं और मुनियों को देखा। यह देख कर पार्वती भगवान् से बोली। २५। हे दयालु, परमेश्वर, शङ्कर इन मुनिसमूहों को देखो जो कि राक्षसों से सताए जा रहे हैं। २६। देवी के इस वचन को सुन कर उस नन्दी ने भी उन ऋषिश्रेष्ठों को विघ्न में पड़े हुए देखा तो उसने हुङ्कार किया। २७। वह दैत्य हुङ्कार से आहत हो कर सरोवर में जा छिपे। देवी ने जब उन्हें छिपे हुए देखा तो उत्तम सरोवर को शाप दे डाला। २८। हे सरोवर, तुम चूंकि मनुष्यों को विघ्न करने वाले दैत्यों और दानवों की रक्षा करते हो, इस कारण हव्य और कव्य से रहित होकर सूख जाओ।२९। इस प्रकार शाप पाकर दिव्य सरोवर झट सूख गया। सूखे हुए उस सरोवर से राक्षसों का समूह बाहर निकल आया।३०। उन्हें बाहर निकलने पर इन्द्र ने नष्ट कर दिया। हे देवेशि, तब से लेकर वह सरोवर नष्ट हो कर सूख गया।३१। हे प्रिये, चूंकि वहां पर बचे हुए राक्षसों का समूह विघ्नकारक

श्री भैरवी—वद सत्यं महादेव पुण्यां पञ्चतरङ्गिणीम् । यां श्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मान्तरभवैरघैः ॥३३॥ पुण्यमक्षय्यमाप्नोति यत्र स्नानान्महेश्वर। दानाद् अत्र महेशान् फलमाप्नोति यागजम् ॥३४॥ श्री भैरवः—शृणु सुन्दरि वक्ष्येऽहं पुण्यां पञ्चतरङ्गिणीम्। यत्र स्नात्वा च प्राप्नोति हयमेधफलं प्रिये ॥३५॥ पुरा ताण्डवलग्नस्य नृत्यमानस्य धूर्जटेः। कपर्दः शिथिलीभूतः पञ्चधा स महेश्वरि ॥३६॥ ततो वै पञ्चधा देवि प्रादुर्भूता कपर्दतः। गङ्गा भगवती देवी महापातकनाशिनी ॥३७॥ या पञ्चधा महेशानि कपर्दात्पञ्चधाऽभवत्। सैव प्रोक्ता पुराविद्भिर्नदी पञ्चतरङ्गिणी ॥३८॥ नद्यां पञ्चतरङ्गिण्यां स्नानं कुर्यादतन्द्रितः। मुच्यते पातकैर्घोरैर्ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ॥३९॥ गोघ्नः कृतघ्नो देवेशि भ्रूणहा गुरुतल्पगः।

होता है, इस कारण हे जगदम्बिके, वहां पर यात्री मौन कर के चले ।३२। **श्री भैरवी बोली**—हे देव, कृपा कर पुण्य पञ्चतरङ्गिणी के विषय में कहें। जिसे सुन कर मनुष्य जन्म जन्मान्तर के किए हुए पापों से छूट जाता है ।३३। हे महेश्वरि, जहां पर स्नान करने से मनुष्य अक्षय पुण्य को प्राप्त करता है। हे महेश्वर, यहां पर दान से, यज्ञ से उत्पन्न फल को प्राप्त करता है ।३४। **श्री भैरव बोले**--हे सुन्दरि सुनो, मैं पुण्य पञ्चतरङ्गिणी को कहता हूं। हे प्रिये, जहां स्नान करके मनुष्य अश्वमेध के फल को प्राप्त करता है ।३५। पहले समय में जब शिव ताण्डवनृत्य में लगे हुए थे तो हे महेश्वरि, उनका कपर्द पांच भागों में शिथिल हो गया ।३६। तब उनके शिथिल हुए कपर्द से महापापों को नष्ट करने वाली भगवती गङ्गा देवी पांच भागों में बंट गई। ३७। हे महादेवि, जो कपर्द से पांच प्रकार पांच भागों में बंट गई, वही पुरावेत्ताओं ने पञ्चतरङ्गिणी नदी कही है । ३८। आलस्य-रहित हो कर मनुष्य पञ्चतरङ्गिणी नदी में स्नान करे। वह ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पापों से छूट जाता है । ३९। हे देवेशि, गोहत्या करने वाला, कृतघ्न, भ्रूणहत्या करने वाला अथवा गुरुतल्पगामी, यहां पर स्नान करने से

अत्र स्नानात् प्रमुच्येत किं पुनः प्रयतो नरः ॥४०॥ कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे । स्नात्वा दत्त्वा च विधिवद् यत्फलं लभते नरः ॥४१॥ तत्फलं समवाप्नोति स्नात्वा पञ्चतरङ्गिणीम् । श्राद्धं च विधिना कुर्याद् यः कश्चिदत्र सुन्दरि ॥४२॥ पितरस्तस्य तृप्यन्ति शतकल्पं न संशयः । गां हिरण्यं सुवासश्च क्षौमं चन्दनमेव च ॥४३॥ कुंकुमागुरुकर्पूरमृगनाभिमपीश्वरि । यो ददाति द्विजश्रेष्ठे स शैवं लोकमाप्नुयात् ॥४४॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वाप्युपपातकैः सद्यः प्रमुच्यते जन्तुः स्नात्वा पञ्चतरङ्गिणीम् ॥४५॥ आरुहेद् रत्नशिखरं ततो डामरकं श्रयेत् । दृष्ट्वा डामरकं तत्र शिलीभूतं महागणम् ॥४६॥ पुण्यमाप्नोति मनुजो ह्यश्वमेधादियागजम् । महापातकयुक्तो वा गोघ्नो वा भ्रूणहाऽपि वा । पुण्यं डामरकं दृष्ट्वा मुच्यते पापकोटिभिः ॥४७॥

इतिश्रीभृङ्गीशसहितायां वायुवर्जनपञ्चतरङ्गिणीमहिमा नामाष्टमः पटलः ॥८॥

छूट जाता है, फिर संयमी पुरुष की तो क्या बात कहनी ? । ४० । कुरुक्षेत्र में, प्रयाग में और गङ्गासागर के संगम में विधिवत् स्नान कर के या दान कर के जो फल मनुष्य को प्राप्त होता है । ४१ । वही फल पञ्चतरङ्गिणी में स्नान कर के प्राप्त होता है । हे सुन्दरि, जो कोई यहां पर विधिपूर्वक श्राद्ध करता है । ४२ । उस के पितर सौ कल्प पर्यन्त तृप्ति को प्राप्त करते हैं, इस में कोई संशय नहीं है । गौ, सोना, सुन्दर वस्त्र, रेशमी वस्त्र, चन्दन । ४३ । कुङ्कुम, अगुरु, कपूर और कस्तूरी को भी हे देवि, जो कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण को देता है, वह शिव के लोक को प्राप्त करता है । ४४ । महापातकों अथवा उपपातकों से युक्त मनुष्य पञ्चतरङ्गिणी में स्नान कर के छूट जाता है । ४५ । यात्री रत्नशिखर पर आरोहण करे और तब डामरक पर जावे । डामरक महागण को वहां पर शिला बने हुए देख कर । ४६ । मनुष्य अश्वमेधादि यज्ञों से उत्पन्न पुण्य को प्राप्त करता है । महापातकों से युक्त, गोघाती या भ्रूणहत्या करने वाला भी पुण्य डामरक के दर्शन कर के करोड़ों

श्री भैरवी—कोऽसौ डामरको देव भवता कथितस्तु यः। गणः कथं शिलीभूतो वद सत्यं महेश्वर ॥१॥ श्री भैरवः—शृणु देवि महेशानि गणं डामरकाभिधम्। यं श्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्विघ्नसंघैरनेकशः ॥२॥ पुरा नर्तनशीलस्य धूर्जटेः सन्ध्ययोर्द्वयोः। षण्मुखं क्रीडयानस्य सन्ध्याकालोऽत्यागात् प्रिये ॥३॥ सन्ध्यातिवाहनात्तस्य चिन्ता मनसि चाभवत्। चिन्तयानस्य तस्यैवं देवी पृष्टवती मुहुः ॥४॥ किमिदं चिन्त्यसे देव का चिन्ता भगवंस्तव। वद सत्यं महादेव मनो मे शर्म नाश्नुते ॥५॥ इति श्रुत्वा वचो देव्याः प्रियं प्रियचिकीर्षया। प्रावदद् भगवान् देवीं सन्ध्याकालोऽत्यगान्मम ॥६॥ सन्ध्यालोपान्मया प्राप्ता चिन्ता च महती प्रिये। इति श्रुत्वा वचस्तस्य देवदेवस्य धूर्जटेः ॥७॥ प्रत्युवाच पुनर्देवी

पापों से छूट जाता है। ४७।

श्री भृङ्गीशसंहिता में वायुवर्जनपञ्चतरङ्गिणीमहिमा-
वर्णन नामक आठवां पटल पूर्ण। ८।

श्री भैरवी बोली—हे देव, कृपा कर बताएं कि वह डामरक गण कौन है जो आपने कहा है। हे महेश्वर, सत्य कहें कि वह किस प्रकार शिला बन गया। १। श्री भैरव बोले—हे देवि महेशानि, डामरक नाम के विषय में सुनें, जिसे सुन कर प्राणी अनेक विघ्नों के समूह से छूट जाता है। २। हे प्रिये, पहले समय में शिव के दोनों सन्ध्याओं में नाचते हुए स्कन्द को खेल कराते हुए सन्ध्याकाल बीत गया। ३। सन्ध्या के बीत जाने से उन के मन में चिन्ता हो गई, इस प्रकार चिन्ता करते हुए उन को देवी बार बार पूछने लगी। ४। हे देव, आप यह क्या सोच रहे हैं, हे भगवन्, आप को क्या चिन्ता है? हे महादेव आप सत्य कहें मेरा मन कल्याण नहीं पाता है। ५। देवी का यह प्रिय वचन सुन कर, प्रिय करने की इच्छा से भगवान् देवी से बोले—कि मेरा सन्ध्याकाल बीत गया है। ६। हे प्रिये, सन्ध्या के लोप से मैं ने बड़ी चिन्ता प्राप्त कर ली है, उस देवदेव धूर्जटि के इस वचन

भगवन्तं सनातनम् । अयं महागणो देव डामरं गृह्य तिष्ठतु ॥८॥ सन्ध्याया वेदनार्थं च चिरकालं महेश्वर । इति श्रुत्वा वचो देव्यास्तथेत्युक्त्वा महेश्वरः ॥९॥ हासयन् षण्मुखं तत्र पुनर्देव्या सहालपत् । तदाप्रभृति देवेशि महाडामरको गणः । तस्थौ सन्ध्यावेदनार्थं भवस्य सुरपूजिते ॥१०॥ एकदा क्रीडयानस्य शिवस्य तनुजं स्वकम् । गणः प्रमादी निद्रायां लीनोऽभूद् वरवर्णिनि ॥११॥ सन्ध्याकालः पुनस्तत्र व्यत्ययगाच्च कपर्दिनः । विमृश्य सन्ध्यालोपं स देवदेवो भवः स्वयम् ॥१२॥ क्रुद्धः शशाप गिरिजे महाडारमकं गणम् । यस्मान्निद्रावशेनापि सन्ध्यालोपः कृतस्त्वया । मम तस्माच्चिरं तिष्ठ शिलीभूतो गणाधम ॥१३॥ इति शप्त्वा गणं तत्र देवदेवो हरः स्वकम् । तस्थौ ध्यानस्थितो देवि चिरं तत्र महीधरे ॥१४॥ तदाप्रभृति देवेशि महाडामरको गणः ।

को सुन कर । ७ । सनातन भगवान् से देवी फिर बोली । हे देव, यह महागण डामर को ले कर खड़ा रहे । ८ । हे महेश्वर, सन्ध्या को प्राप्त करने के लिए बड़ा समय है । देवी के इस वचन को सुन कर और 'तथा' कह कर महेश्वर ने । ९ । स्कन्द को हंसाते हुए वहां पर देवी के साथ यह आलाप किया । हे देवेश्वरि, तब से ले कर महाडामरक गण शिव की सन्ध्या की प्राप्ति के लिए स्थिर रहा । हे देववन्दिते । १० । हे वरवर्णिनि, एक बार जब कि शिव अपने पुत्र को खेल करा रहे थे तो प्रमादशील गण निद्रा में लीन हो गए । ११ । इतने में शिव जी का सन्ध्याकाल पुनः लोप हो गया । सन्ध्या के लोप का विचार करके वह देवाधिदेव भव स्वयं । १२ । क्रोध में आ कर महाडामरक गण को शाप दे बैठे । चूंकि निद्रा के वश में तुम ने सन्ध्या का लोप कर दिया है । इस कारण हे नीच गण, तुम बहुत देर तक शिला बन कर बैठे रहो । १३ । इस प्रकार देवदेव भगवान् शिव अपने गण को शाप दे कर हे देवि ध्यान मग्न हो कर उस पर्वत पर बहुत देर तक ध्यान में स्थित रहे । १४ । हे देवेशि, तब से ले कर महाडामरक गण वहां उस रत्न-पर्वत के

दृषद्रूपोऽभवत्तत्र रत्नपर्वतमूर्धनि ॥१५॥ यः कश्चिन्मानवो लोके गणं डामरकं श्रयेत् । य याति ब्रह्मसालोक्यमिति सत्यं वदामि ते ॥१६॥ यः कश्चिदपि चेशानि पुण्यं गर्भगृहं श्रयेत् । गर्भात्स मुच्यते जन्तुरिति सत्येन ते शपे ॥१७॥ श्रीभैरवी—गर्भागारश्च को देवि किमर्थं तत्र स्थापितः । किं फलं निःसृतानां च नराणां वद तत्फलम् ॥१८॥ श्री भैरवः—शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गर्भागारमनुत्तमम् । यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकपञ्जरात् ॥१९॥ पुरा नन्दिनमासाद्य देवा विवदिरे भृशम् । ते निषिद्धास्तेन पुनर्युयुधुस्ते परस्परम् । ॥२०॥ विनाऽमरैस्ततो नन्दी प्रणिपत्य पुरो हरम् । दण्डं त्यक्त्वा च विज्ञप्तिं चक्रे च सुरपूजिते ॥२१॥ भगवन् करुणाम्भोधे लोकनाथ जगत्प्रभो । उद्विजामि भृशं त्रस्तो देवेभ्य इति चेश्वरम ॥२२॥ पुनर्विज्ञापयामास हरं प्रणतवत्सलम् ।

शिखर पर पत्थर रूप हो गया । १५ । जो कोई मनुष्य संसार में डामरक गण का आश्रय लेता है । वह ब्रह्म के समान लोक को प्राप्त होता है, यह मैं आप को सत्य कहता हूं । १६ । हे ईशानि, जो कोई भी इस पुण्यकारक गर्भगृह का आश्रय लेवे, वह प्राणी गर्भ से छूट जाता है, यह मैं आप को सत्य कहे देता हूं । १७ । **श्री भैरवी बोली**—हे देव, गर्भागार कौन सा है ? और वहां पर किस कारण स्थापित है, वहां से निकले हुए मनुष्यों का क्या फल है, आप उस फल को कहें । १८ । **श्री भैरव बोले**—हे देवि, सुनो, मैं अतिश्रेष्ठ गर्भागार को कहता हूं । जिसे सुन कर प्राणी महापापों के पिंजरे से मुक्त हो जाता है । १९ । पहले नन्दी को पा कर देवता बार बार आपस में विवाद करने लगे । जब उन्हें उस ने रोका तो वह परस्पर लड़ने लग पड़े । २० । हे सुरपूजिते, देवताओं के विना वह नन्दी दण्ड छोड़ कर शिव के समक्ष नमस्कार करके विज्ञप्ति करने लगा । २१ । हे भगवन्, करुणानिधान, लोकनाथ, संसार के प्रभु, मैं देवताओं से बहुत डरा हुआ दुःख पाता हूं—यह महेश्वर से (कहने लगा) । २२ । फिर भक्तवत्सल भगवान् से विज्ञापन

श्रुत्वा नन्दिवचो देवि हरः प्रोवाच तं मुदा ॥२३॥ गृहाण दण्डं भो नन्दिन् किं कुर्वन्ति च ते सुराः। गर्भद्वारमिदं सम्यक् स्थापयाशु समन्ततः ॥२४॥ यतो निस्सरणे शक्तिं न लभन्ते सुरासुराः। इति श्रुत्वा वचस्तस्य महेशस्य महागणः ॥२५॥ महाप्रस्थं समुत्थाप्य गर्भागारमकारयत्। गर्भद्वारान्निस्सरति यः कश्चिन्मनुजः प्रिये ॥२६॥ स याति शिवसालोक्यं न पुनः स्तन्यपो भवेत्। यः कश्चिदपि चेशानि भ्रूणहा गुरुतल्पगः ॥२७॥ मातृहा पितृहा चापि सुरापो भ्रातृहाऽपि च। स याति परमं दिव्यं पदं सादाशिवं प्रिये ॥२८॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः। सोऽपि प्रमुच्यते सद्यो गर्भद्वाराद् विनिःसृतः ॥२९॥ कलौ पापवनं देवि प्रसभं छेत्तुमिच्छसि। तदा श्रयस्व देवेशं गर्भद्वारविनिस्सृता ॥३०॥ स्नात्वाऽमरावतीं नाम्नीं नदीं परमपावनीम्। भस्माङ्गसितदेहश्च

करने लगा। नन्दी के वचन को सुन कर शिव जी उसे बड़ी प्रसन्नता से बोले। २३। हे नन्दिन् तुम दण्ड-ग्रहण करो, वह देवता क्या कर लेंगे। इस गर्भद्वार को शीघ्र ही चारों ओर रख दो। २४। चूंकि देवता और असुर निकलने में शक्ति नहीं प्राप्त करते। उस महेश के वचन को सुन कर वह महागण। २५। महाप्रस्थ उठा कर गर्भागार बनाने लगे। हे प्रिये, जो कोई मनुष्य गर्भागार से निकलता है। २६। वह शिव के समान लोक को प्राप्त करता है और पुनः वह दूध पीने वाला बच्चा नहीं बनता अर्थात् जन्म नहीं लेता। हे ईशानि, जो कोई भ्रूणहत्या करने वाला हो या गुरुतल्पगामी हो। २७। माता की हत्या करने वाला हो, पिता की हत्या करने वाला हो, शराब पीने वाला हो, भाई की हत्या करने वाला हो। वह परम पद को प्राप्त करता है, हे प्रिये वही सदाशिव का परम पद है। २८। इस गर्भद्वार से निकलने पर महापातकों या उपपातकों से युक्त व्यक्ति भी शीघ्र ही छुटकारा पा जाता है। २९। हे देवि, यदि तुम कलियुग में पापों के वन को शीघ्रता से काट देना चाहती हो, तब गर्भद्वार से निकल कर देवेश का आश्रय लो। ३०। परम पवित्र

गुहास्थममरेश्वरम् ॥३१॥ *गोलो वा *कुण्डजो वापि यः कश्चिदत्र निस्सृतः । स भवेत्तु गणो देवि चेति सत्येन ते शपे ॥३२॥

इतिश्रीभृङ्गीशसंहितायां डामरकगर्भागारमहिमा नाम नवमः पटलः ॥६॥

श्री भैरवी—स्मारं स्मारं महेशान पुण्यं माहात्म्यमुत्तमम् । तीर्थानां परमं दिव्यं निवृत्तास्मि भवार्णवात् ॥१॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि ह्यमरेशं महेश्वरम् । कथं स ह्यमराख्यो गुहास्थो ह्यभवत् किल ॥२॥ नदी च परमा पुण्या कथं सा ह्यमरावती । तत्सङ्गमस्य माहात्म्यं वद मे प्रियकाम्यया ॥३॥ श्री भैरवः—साधु साधु महाभागे प्रश्नमेतत् सुदुर्लभम् । कृतं त्वया पूजितया जन्तूनां हितकाम्यया ॥४॥ अथ वक्ष्ये महतीर्थममरेशस्य सुन्दरि । यच्छ्रुत्वाऽपि प्रमुच्येत महापातक-

करने वाली अमरावती नाम की नदी में स्नान कर के भस्म को अङ्गों में लगा कर गुफा में स्थित अमरेश्वर को (प्राप्त करे) । ३१ । जो कोई भी यहां से निकले, वह चाहे गोल* हो अथवा कुण्डज* हो, हे देवि, वह गण बन जाता है, यह मैं तुम्हें सत्य की शपथ से कहता हूं । ३२ ।

श्री भृङ्गीशसंहिता में डामरक-गर्भागार-महिमा-नामक नवम पटल पूर्ण । ६ ।

श्री भैरवी बोली—हे महेश्वर, मैं तीर्थों के परम दिव्य, पुण्य, उत्तम माहात्म्य को स्मरण करती हुई संसार सागर से निवृत्त हो गई हूं । १ । अब मैं श्री अमरेश महेश्वर को सुनना चाहती हूं । वह अमरेश किस प्रकार गुफा में स्थित हो गए । २ । वह परम पुण्य अमरावती नदी कैसे हुई । आप मेरा प्रिय करने की इच्छा से उस के सङ्गम के माहात्म्य को मुझे कहें । ३ । **श्री भैरव बोले**—हे महाभागे, आप ने यह बहुत भला दुर्लभ और श्रेष्ठ प्रश्न प्राणियों की हितकामना से किया है । ४ । अब मैं श्री अमरेश के महातीर्थ को कहता हूँ । हे सुन्दरि, जिसे सुन कर प्राणी करोड़ों

*'अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः' इत्यमरः ।

कोटिभिः ॥५॥ न सदासीन्नोऽसदासीत्तदानीमपि सुन्दरि । नियतिरभवत्तस्मात् परस्मात् परमात्मनः ॥६॥ नियतेरहमुत्पन्न इति शुश्रुम सुन्दरि । अहो मे मृत्युरभवत् सर्वे देवाः सवासवाः ॥७॥ ऋषयः पितरश्चापि गन्धर्वोरगराक्षसाः । यक्षा भूतगणाश्चापि कूष्माण्डा भैरवादयः ॥८॥ मनुष्या जम्बुकाः क्रूरा दैत्या दानवपुङ्गवाः । एते चान्ये च बहव उत्पन्ना नियतेः स्वयम् ॥९॥ चतुर्दशविधो भूतसर्गः प्रादुरभूत्ततः । मृत्युस्तानग्रसत् सर्वान् देवानपि सवासवान् ॥१०॥ देवास्ते मृत्युना ग्रस्ता व्याकुला ह्यभवन् प्रिये । समेत्य शरणं जग्मुः शरण्यं परमेश्वरम् । तुष्टुवुः परया प्रीत्या शिवं भवमनामयम् ॥११॥ देवा ऊचुः—*ओं नमश्चिच्चन्द्रिकोद्बोध प्रकाशानन्दरूपिणे । परमार्थदशास्थाय स्थाणवे विश्वभानवे ॥१२॥ नमश्चित्याय चिन्त्याय चित्त्यज्ञाय चिदर्थिने । चिच्चन्द्रना-

पातकों से छूट जावे । ५ । हे सुन्दरि, तब न सत् था और न ही असत् था, उस परमात्मा से केवल नियति उत्पन्न हुई । ६ । हे सुन्दरि यह सुनते हैं कि उस नियति से मैं उत्पन्न हुआ । तब मेरी मृत्यु हो गई, इन्द्र के समेत सभी देवता । ७ । ऋषि, पितर, गन्धर्व, उरग, राक्षस, यक्ष, भूतगण, भैरवादि कूष्माण्ड । ८ । मनुष्य, गीदड़, क्रूर दैत्य, दानव श्रेष्ठ, यह और बहुत से अन्य नियति से उत्पन्न हो गए । ९ । वहां से चौदह प्रकार की भूतसृष्टि उत्पन्न हुई, इन्द्र के समेत उन सारे ही देवताओं को मृत्यु ने ग्रस लिया । १० । हे प्रिये, मृत्यु से ग्रस्त हुए वह देवता व्याकुल हो गए । इकट्ठे हो कर वह शरण के योग्य परमेश्वर की शरण में गए । अनामय भवशिव की वह परम प्रसन्नता से स्तुति करने लगे । ११ । **देवता बोले***—चित्स्वरूप, चन्द्रिका से उद्बोध पाने वाले, प्रकाश और आनन्दरूपी, परमार्थ (मोक्ष) की दशा में स्थित, स्थाणु, विश्वप्रकाशक उस भगवान् को नमस्कार हो । १२ । चित्स्वरूप, चिन्तन के गोचर, चित्य और ज्ञानरूप (?), चित् के अर्थी, चेतनारूपी चन्द्र

---

*श्लोक १२ से १६ तक को अमरेश्वरस्तोत्र के रूप में पढ़ा जा सकता है।

शिताशेषस्वान्तमोहाय शम्भवे ॥१३॥ विमर्शिने विधिज्ञायाऽविधिज्ञाय नमो नमः। विशेषज्ञाय विश्वाय जयविश्वोपकारिणे ॥१४॥ विश्वरूपाय देवाय विश्ववासाय ते नमः। नमो विधिनिषेधाय विधिज्ञापतये नमः ॥१५॥ निषेधज्ञाय देवाय तत्स्वरूपाय ते नमः। इडापिङ्गलरूपाय नमस्तन्मध्यवर्तिने ॥१६॥ सुषुम्नामध्यगायापि सूक्ष्माय शंभवे नमः। नमस्ते सर्वमृग्याय सूक्ष्ममार्गार्थदर्शिने ॥१७॥ नमो नियतिरूपाय तत्त्वरूपाय ते नमः। महत्तत्त्वाय देवाय सूक्ष्मतत्त्वाय ते नमः ॥१८॥ नमोऽमृताय देवाय नमोऽमृतस्वरूपिणे। मृत्युञ्जयाय देवाय भूयो भूयो नमो नमः ॥१९॥ इति श्रुत्वा तु देवानां स्तुतिं परमपावनीम्। हरो गम्भीरया वाचा देवांस्तान् प्रत्युवाच ह ॥२०॥ किमर्थमाकुला यूयमागताः सुरसत्तमाः। कथयध्वं यतः सर्वमदेयं मयि वो ददे ॥२१॥

से अपने अन्तःकरण के मोह को नाशित करने वाले शम्भु को नमस्कार हो। १३। विमर्श करने वाले विधि के वेत्ता तथा अविधि के भी वेत्ता को नमस्कार हो, विशेषज्ञ, विश्व और विश्व के उपकारी की जय हो। १४। विश्वरूप देव, विश्ववास आप को नमस्कार हो, विधि निषेध रूप तथा विधिज्ञापति को नमस्कार हो। १५। निषेध के ज्ञाता देव तथा तत्स्वरूप देव को नमस्कार हो, इडा पिङ्गला रूपी और उन के बीच रहने वाले उन को नमस्कार हो। १६। सुषुम्ना के मध्य में रहने वाले सूक्ष्म शम्भु को नमस्कार हो, सभी के लिए अन्वेषणीय तथा सूक्ष्म मार्गों के अर्थ दर्शन करने वाले आप को नमस्कार हो। १७। नियतिरूप और तत्त्वरूप आप को नमस्कार हो, महत्तत्त्व देव तथा सूक्ष्मतत्त्व आप को नमस्कार हो। १८। अमृत देव को नमस्कार हो, अमृतस्वरूपी देव को नमस्कार हो, मृत्युञ्जयदेव को बार बार नमस्कार हो।१९। इस प्रकार देवताओं की परम पवित्र करने वाली नमस्कार को सुन कर भगवान् शिव उन देवताओं को गम्भीर वाणी से बोले। २०। हे देवताओ, तुम व्याकुल हो कर क्यों आए हो। कहो, ताकि मैं तुम्हें सभी अदेय वस्तु भी दे

इति तस्य महेशस्य श्रुत्वा देवाः सवासवाः। प्रत्यूचुस्ते हरं मृत्युर्ग्रसतीति बलाच्च नः ॥२२॥ यतः स मृत्युर्नश्येन्नो न सेवेच्च बलेन हि। तत्कुरुष्व महादेव भक्तानामार्तिनाशन ॥२३॥ श्री भैरवः—श्रुत्वा देववचः सौम्यं महेशः प्रत्युवाच तान्। मृत्यूपायं करिष्यामि सहध्वं क्षणमुत्तमाः ॥२४॥ गृहीत्वा शिरसस्तत्र हरश्चन्द्रकलां स्वयम्। संपीड्य देवानवदन्मृत्युभेषजमुत्तमम् ॥२५॥ पीडनाद् या निस्सृता च धारा परमिका प्रिये। सैव भूता नदी पुण्या नाम्ना वै ह्यमरावती ॥२६॥ ये विन्दवश्च्युता देवि शरीरेऽमृतविन्दवः। ते भस्मरूपतां प्राप्य च्युताश्चाश्यानतां गताः ॥२७॥ प्रेम्णा तेषां महादेवि शिवोऽपि द्रवतामगात्। ते दृष्ट्वाऽपि शिवं तत्र द्रवीभूतं महेश्वरि ॥२८॥ तुष्टुवुर्वाग्भिरर्थ्याभिः प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः। स्वं पुनर्दर्शयामास देवानां हितकाम्यया। रसोऽप्याश्यानतां

डालूं। २१। इस प्रकार इन्द्र के समेत सभी देवता उस महेश के इस वचन को सुन कर बोले कि हे महादेव हमें बलपूर्वक मृत्यु ग्रास कर रही है। २२। हे महादेव, भक्तों की पीड़ा को नष्ट करने वाले आप ऐसा उपाय करें, जिस से वह मृत्यु नष्ट हो जावे और हमारी सेवा न करे। २३। श्री भैरव बोले—देवताओं के इस सौम्य वचन को सुन कर महेश उन्हें बोले, मृत्यु के उपाय को मैं करता हूँ, हे उ म लोगो तुम उसे क्षण भर सह लो। २४। तब शिव जी ने स्वयं अपने सिर से चन्द्रकला को लेकर निचोड़ा और देवताओं को मृत्यु की उत्तम औषधि बताई। २५। हे प्रिये, उस के निचोड़ने से जो परमधारा निकली, वही पवित्र नदी अमरावती बन गई। २६। हे देवि उनके शरीर से जो बूंदें टपक पड़ीं, वह शरीर में अमृत की बूंदें बन कर भस्म के रूप को प्राप्त हो गईं और टपक कर जम गईं। २७। उन के प्रेम से हे देवि, शिव भी गल गए। हे महेश्वरि, शिव को भी वहां पर द्रवित हुए देख कर। २८। वह बार बार अर्थनीय वाणियों से स्तुति करने लगे और प्रणाम करने लगे। देवताओं की हितकामना से फिर उन्हों ने अपना रूप लिङ्गरूप में दिखाया।

प्राप्य लिङ्गरूपोऽभवद्गिरौ ॥२९॥ लिङ्गरूपं हरं वीक्ष्य द्रवीभूतं महेश्वरि। पुनः पुनः प्रणेमुस्ते भवं कारुणिकं परम् ॥३०॥ देवान् नतिपरान् दृष्ट्वा प्रोवाच सुरसत्तमान्। हरः परमया वाचा शृणुध्वं देवसत्तमाः ॥३१॥ इतःप्रभृति लिङ्गं मे ह्यमरेशाख्यमुत्तमम्। पुण्यं परमकं देवास्त्रिलोक्यां ख्यातिमेष्यति ॥३२॥ नत्वा च दण्डवत् तत्र लिङ्गं तद्ध्यमरेश्वरम्। देवाः प्रदक्षिणीकृत्य स्वं स्वमालयमाययुः ॥३३॥ श्री भैरवः— इति दत्त्वा वरं देवानमरेशो महेश्वरि। तदा प्रभृति लीनोऽभूद् गिरिदर्यन्तरे हरः ॥३४॥ अमां सोमकलां गृह्य हीश्वराणां हितेच्छया। मृत्युनाशं चकाराशु तस्माद् वै ह्यमरेश्वरः ॥३५॥ मृत्युहीना यतो देवि ईश्वरेण कृताः सुराः। ततः प्रोक्तं पुराविद्भिर्ह्यमरेश्वरसंज्ञकम् ॥३६॥ भवरोगं च गृह्णाति भक्तानां चेश्वरः स्वयम्। यद्दर्शनात्ततः प्रोक्तं ह्यमरेशाख्यमुत्तमम् ॥३७॥ अमां प्रभृति पूर्णान्तां कलां गृह्णाति चेश्वरः। ततः

वह रस भी जम कर पर्वत में लिङ्गरूप का बन गया ।२९। हे महेश्वरि— शिव को लिङ्ग रूप में पिघले हुए देख कर वह देवता परमकारुणिक भवदेव को बार बार प्रणाम करने लगे ।३०। देव श्रेष्ठ देवताओं को प्रणाम करते हुए देख कर शिव परम उत्तम वाणी से बोले, हे देवताओ सुनो। ३१। अब से ले कर यह मेरा अमरेश नामक उत्तम लिङ्ग परमपुण्यवाला त्रिलोकी में प्रसिद्ध हो जावेगा। ३२। उस अमरेश्वर के लिङ्ग को विधिपूर्वक प्रणाम कर के देवता प्रदक्षिणा कर के अपने अपने स्थान पर आ गए। ३३। श्री भैरव बोले—हे महेश्वरि, इस प्रकार अमरेश देवताओं को वर देकर तब से ले कर पर्वतगुफा में लीन हो गए। ३४। अमा की सोमकला को ले कर देवताओं की हितकामना से शिव ने मृत्युनाश किया। इस कारण यह अमरेश्वर बने। ३५। हे देवि, चूंकि ईश्वर ने देवताओं को मृत्युहीन कर दिया। इस कारण इसे पुराविदों ने अमरेश्वर का नाम दिया है। ३६। ईश्वर स्वयं दर्शन मात्र से भक्तों के संसार के कष्टों को ले लेते हैं अतः इसे

प्रोक्तं च तन्त्रज्ञैर्भगवानमरेश्वरः ॥३८॥ यद्बिन्दुरसनाच्चैव ह्यजरामर-कारणम् । मोक्षैश्वर्यप्रदं यस्मात् प्रोक्तममरसंज्ञकम् ॥३९॥ इदं रसमयं लिङ्गं महाप्रेमसमुद्भवम् । सामरस्यप्रदं देवि तव स्नेहात् प्रकाशितम् ॥४०॥ यात्रां कृत्वा तु देवेशि स्नात्वाऽमरावतीजले । भस्मनाऽऽलिप्य चाङ्गानि मोक्षमाप्नोति मानवः ॥४१॥ कृत्वा तु ताण्डवं देवि गुहायां सुप्रहर्षितः । स एव रुद्रः कथितो नरः परमपावनः ॥४२॥ यः सवासा गुहास्थं च प्रपश्येल्लिङ्गमुत्तमम् । स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥४३॥ यः पश्येद् भस्महीनाङ्गो रसलिङ्गं सनातनम् । स कुष्ठी च भवेद् देवि जन्तुर्जन्मनि जन्मनि ॥४४॥ यात्रामकृत्वा यो देवि पश्येद् वै ह्यमरेश्वरम् । स याति दारुणान् घोरान् नरकानेकविंशतिम् ॥४५॥

उत्तम अमरेश कहा गया है । ३७ । ईश्वर अमा से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त कला को ग्रहण कर लेते हैं अतः इसे तन्त्रज्ञ लोग अमरेश्वर भगवान् कहते हैं । ३८ । चूंकि बिन्दुओं के टपकने मात्र से यह अजर अमर कारण रूप हैं और मोक्ष तथा ऐश्वर्य के प्रदाता हैं इस कारण इसे अमरसंज्ञा दी गई है । ३९ । यह रसमय लिङ्ग महाप्रेम से उत्पन्न है और समरसता को प्रदान करता है, अतः हे देवि, इसे आपके स्नेह से मैं ने प्रकाशित कर दिया है । ४० । हे देवेशि, यात्रा कर के और अमरावती के जल में स्नान कर के, भस्म से अङ्गों का लेप कर के मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है । ४१ । हे देवि, गुफा में खूब ताण्डव कर के वही हर्षयुक्त रुद्र परमपवित्र करने वाला कहा गया है । ४२ । जो वस्त्र समेत गुफा में स्थित उत्तम लिङ्ग के दर्शन करता है, वह घोर नरक को प्राप्त करता है जब तक कि चौदह इन्द्र वर्तमान हैं । ४३ । भस्म से रहित अङ्गों वाला हो कर जो सनातन रसलिङ्ग को देखता है, हे देवि—वह पुरुष जन्म जन्म में कोढ़ी होता है । ४४ । हे देवि, जो व्यक्ति यात्रा न कर के अमरेश्वर के दर्शन करता है, वह कठोर इक्कीस नरकों को प्राप्त करता है । ४५ । जो मनुष्य ताण्डव न कर के पर्वतगुफा के बीच

योऽकृत्वा ताण्डवं देवि पश्येद् गिरिगुहान्तरे। रसलिङ्गं तीर्थद्रोही भवत्येव न संशयः ॥४६॥ यो अपूज्य प्रयात्येव नरोधरगुहान्तरात्। चतुरशीतिलक्षाणि नरकाणि प्रयाति वै ॥४७॥ योऽदत्त्वा पुनरायाति ह्यमरेशगुहान्तरात्। स याति दारुणं घोरं नरकं कालसूत्रकम् ॥४८॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा ह्युपपातकैः। दृष्ट्वा रसमयं लिङ्गं सद्यो मुच्येत सुन्दरि ॥४९॥ भ्रूणहा गुरुतल्पी च सुरापी स्वर्णहारकः। एते दृष्ट्वा महेशानं ह्यमरेश्वरसंज्ञकम्। मुच्यन्ते तत्क्षणाद् देवि सत्यं सत्यं वरानने ॥५०॥ मातृगामी पितृहा च भ्रातृजायादिकामुकः। दृष्ट्वा रसमयं लिङ्गं सद्यो मुच्येत सुन्दरि ॥५१॥ पितृष्वसृमातृष्वसृ-भगिनीकामुकः प्रिये। स्नुषाभिगामी दुर्बुद्धिर्मुच्येदेव न संशयः ॥५२॥ गोमांसभक्षी मधुपः सुरेज्यात्यागी प्रिये वत्सहा बालहा

में रसलिङ्ग के दर्शन करता है, वह तीर्थद्रोही हो जाता है, इस में तनिक संशय नहीं है। ४६। जो मनुष्य पूजा किए विना नीचे की गुफा के बीच में से जाता है, वह चौरासी लाख नरकों को प्राप्त करता है। ४७। जो अमरेश की गुफा से विना दान किए लौट आता है, वह कालसूत्रक नाम के दारुण घोर नरक को प्राप्त करता है। ४८। हे सुन्दरि, महापातकों अथवा उपपातकों से युक्त मनुष्य रसमय लिङ्ग के दर्शन करके शीघ्र मुक्त हो जाता है। ४९। हे वरानने देवि, भ्रूणहत्या करने वाला, गुरुतल्पगामी, शराब पीने वाला, सोना चुराने वाला, यह अमरेश्वरसंज्ञक महेश्वर के दर्शन करके उसी क्षण छूट जाते हैं। ५०। मातृगामी, पितृहत्या करने वाला या भौजाई आदि का कामुक हे सुन्दरि, रसमय लिङ्ग के दर्शन करके शीघ्र मुक्त हो जाता है। ५१। हे प्रिये, फूफी मासी अथवा बहिन का कामुक, स्नुषा के साथ बुरी भावना वाला दुर्बुद्धि भी अवश्य ही छूट जाता है, इस में कोई संशय नहीं है। ५२। हे प्रिये, गोमांस भक्षण करने वाला, शराब पीने वाला, देवयज्ञों को छोड़ने वाला, वत्सहत्या करने वाला या बालहत्या करने वाला, गर्भ-

च । गर्भघाती स्रावकृत्पातकृच्च सद्यो मुच्येद् वीक्ष्य मां लिङ्गरूपम् ॥५३॥ महाक्रोधी लोभमोहाभिभूतः स्वर्णस्तेयी परजायाभिगामी । छिद्रापेक्षी साधुनिन्दारतश्च दम्भाचारोऽनृतवागल्पबुद्धिः ॥ दृष्ट्वा देवममरेशाख्य-लिङ्गं द्रवीभूतं पर्वतस्यान्तरेव । मुच्येत्तस्मात् पापसङ्घाच्च देवि सत्यं सत्यं नानृतं ते वदामि ॥५४-५५॥ चान्द्रायणैः कृच्छ्रशतैर्महासान्तपनैश्च यत् । फलं प्राप्नोति यद्देवि तत्प्राप्नोत्यस्य दर्शनात् ॥५६॥ कुरुक्षेत्रे प्रयागे च नैमिषे कुरुजाङ्गले । गवां कोटिसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति ह्यमरेशस्य दर्शनात् ॥५७॥ सुसूक्ष्मैः श्वेतवासोभिर्मृग-कुङ्कमचन्दनैः । कर्पूरैः स्वर्णपुष्पैश्च रौप्यैर्वाऽपि महेश्वरि ॥५८॥ पूज-यित्वाऽमरेशाख्यं लिङ्गं रसमयं प्रिये । स एव रुद्रो भवति न पुनः स्तन्यपो भवेत् ॥५९॥ नारी वा पुरुषो वाऽपि पूजयेल्लिङ्गमुत्तमम् । स याति शिवसालोक्यं यत्र गत्वा न शोचते ॥६०॥ अमरेशं महालिङ्गं

हत्या करने वाला, गर्भस्राव करने वाला, गर्भपात करने वाला मुझे लिङ्ग रूप में देख कर शीघ्र मुक्त हो जाता है । ५३ । महाक्रोधी, लोभ अथवा मोह से दबा हुआ, सोना चुराने वाला परस्त्री की कामना वाला, झूठ बोलने वाला या छोटी बुद्धिवाला अमरेशनामक लिङ्ग के दर्शन कर के जो कि पर्वत के अन्दर ही पिघला हुआ है, हे देवि, मैं सच सच कहता हूं कि उस पापसङ्घ से मुक्त हो जाता है । ५४-५५ । चान्द्रायणों से, सैंकड़ों कृच्छ्रों से या महासान्तपनों से जो फल प्राप्त होता है । ५६ । कुरुक्षेत्र में, प्रयाग मे, नैमिष में या कुरुजाङ्गल में करोड़ गौओं के दान से जो फल है, वही फल अमरेश के दर्शन से प्राप्त होता है । ५७ । हे महेश्वरि, अतिसूक्ष्म सफेद वस्त्रों से मृगकुङ्कुम और चन्दन से, कपूर से, सुनहरे पुष्पों से या चांदी से । ५८ । अमरेश नाम के रसमय लिङ्ग की पूजा कर के मनुष्य रुद्र-रूप बन जाता है, वह पुनः दुधमुंहा नहीं बनता अर्थात् जन्म नहीं लेता । ५९ । जो स्त्री अथवा पुरुष इस उत्तम लिङ्ग की पूजा करता है । वह शिव के समान लोक को प्राप्त करता है, जहां

दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा कलौ नरः । कैवल्यं याति सद्यः स इति सत्यं वरानने ॥६१॥ पीत्वा ह्यमृतधारां तु पतितां तां गुहान्तरे । याति शिवपदं देवि यज्ञानां प्राप्यते फलम् ॥६२॥ कपोतांस्तु गणांस्तत्र दृष्ट्वा हृष्टस्तु यो नरः । स एव रुद्रो भवति जयेति प्रवदन् मुहुः ॥६३॥ श्री भैरवी—कपोताः के गणास्तत्र कथं तत्र स्थिताः प्रभो । वद मे कृपया शम्भो लोकानां हितकाम्यया ॥६४॥ श्रीभैरवः—शृणु सुश्रोणि वक्ष्यामि कपोता येऽभवन् किल । यान् दृष्ट्वा मुच्यते जन्तुर्महापातकसञ्चयात् ॥६५॥ यदा प्रभृति देवेशि महाडामरको गणः । तदा प्रभृति तत्रैव स्थापितास्ते गणास्तथा ॥६६॥ ताण्डवावेदनार्थं च सन्ध्याकालस्य सुन्दरि । एकदा नृत्यमानस्य सन्ध्यायां चैव धूर्जटेः ॥६७॥ स्पर्धया 'कुरु कुर्वि' त्यूचुस्ततोऽमरवन्दिते । परस्परं स्पर्धयात्र शब्दं 'कुर्वि' ति चक्रिरे ॥६८॥ततः क्रुद्धो महेशानो गणानशपदो-

---

जा कर वह शोक प्राप्त नहीं करता । ६० । हे वरानने, कलियुग में अमरेश-महालिङ्ग के दर्शन कर के मनुष्य झट से कैवल्यपद को प्राप्त करता है, यह सत्य है । ६१ । गुफा के बीच में पड़ी हुई अमृत धारा को पीकर मनुष्य शिवपद को प्राप्त करता है, हे देवि यज्ञों का फल भी प्राप्त करता है । ६२ । कपोतगणों को देख कर जो मनुष्य प्रसन्न हुआ वही बार-बार जयकार करके रुद्र रूप हो जाता है । ६३ । **श्री भैरवी बोली**—हे प्रभो, वहां पर कपोत कौन से गण हैं और वह वहां पर किस प्रकार हैं ? हे शम्भो, यह मुझे आप कृपा करके लोक-कल्याण की भावना से बतावें । ६४ । **श्री भैरव बोले**—हे सुश्रोणि, सुनो—यह कपोत कौन थे मैं तुम्हें कहता हूँ । जिन्हें देख कर प्राणी महापातकों के सञ्चय से छूट जाता है । ६५ । हे देवेशि, हे सुन्दरि,—जब से लेकर यह महाडामरक गण है तब से लेकर यह गण सन्ध्याकाल के ताण्डव की सूचना के लिये वहीं पर स्थापित हैं । एक बार सन्ध्याकाल में शिव जी के नाचते हुए स्पर्धा से यह 'कुरु' 'कुरु' का शब्द करने लगे । हे अमरवन्दिते, आपस में स्पर्धा से इन्होंने 'कुरु' के शब्द को किया । ६६–६८ । तब महादेव जी ने क्रोध

जसा। यस्मात् 'कुरु कुरु'-शब्दं कुर्वाणाःस्थ चिरं गणाः ॥६९॥ कपोत-रूपास्तीर्थस्य विघ्नसङ्घापहारिणः। इत्थं शप्तस्ततो देवा हरेण परमात्मना। भूताः कपोतरूपास्ते तीर्थविघ्नापहारिणः ॥७०॥ योऽदृष्ट्वा तु गुहान्तस्थान् कपोतान् गगनात् प्रिये। अवरुहेद् गिरेस्तस्मात्तीर्थद्रोही स्मृतो बुधैः ॥७१॥ तस्मात्ते दर्शनीयास्तु कपोता गणसत्तमाः। महापाप-हराः प्रोक्ता यात्रिभिः परमास्तिकैः ॥७२॥ स्नात्वा दृष्ट्वा श्रुता चापि स्पृष्ट्वा देवि समन्ततः। अमरेश्वरतां याति ततः प्रोक्ताऽमरावती॥ अमरा-वत्यां स्नात्वा तु नरो मुच्येत संकटात् ॥७३॥ कलिकल्मषघोरनाशनं रसलिङ्गं समुदीरितं प्रिये। पशुपाशविनाशनं परं ह्यमरेश्वरनामनाम-कम् ॥७४॥ यः करोति महापूजां रसलिङ्गस्य सुन्दरि। स याति शिव-

---

में आकर गणों को ओज से शाप दे डाला। हे गणो, तुम चूंकि बहुत देर तक 'कुरु कुरु' की आवाज़ कर रहे थे ।६९। (इस कारण) कपोत (कबूतर) रूप को प्राप्त हो जाओ और तीर्थ के विघ्नसमूह को दूर करो। इस प्रकार जब शिव परमात्मा ने उन्हें शाप दिया, तो वह तीर्थ के विघ्नों को दूर करने वाले कपोतरूप को प्राप्त हो गये ।७०। हे प्रिये जो मनुष्य गुफा के बीच में स्थित उन कबूतरों को आकाश से न देख कर उस पर्वत से उतर पड़ता है उसे विद्वान् लोग तीर्थद्रोही कहते हैं ।७१। इस कारण वह गण-श्रेष्ठ कपोत दर्शन के योग्य हैं और परम आस्तिक यात्री लोग उन्हें महापापों को दूर करने वाला कहते हैं ।७२। स्नान करके, दर्शन करके श्रवण से अथवा चारों ओर से स्पर्श कर के मनुष्य अमरेश्वर का रूप पाता है ।इस कारण इसे अमरावती कहते हैं। अमरावती में स्नान कर के मनुष्य संकट से छूट जाता है ।७३। हे प्रिये, रसलिङ्ग कलियुग के घोर पापों को नष्ट करने वाला माना गया है। यह पशुपति के पाश से भी छुड़ाता है। इस कारण इस का अमरेश्वर नाम है ।७४। हे सुन्दरि, जो मनुष्य रसलिङ्ग की महापूजा को करता है। वह शिव जी के समान लोक को प्राप्त करता है, यह मैं तुम्हें सत्य

सालोक्यमिति सत्यं वदामि ते ॥७५॥ सिद्धिलिङ्गमिदं प्रोक्तं बुद्धिलिङ्गमिदं प्रिये। इदं पुंसवनं लिङ्गं महत्तेजोविवर्धनम् ॥७६॥ कन्याप्रदं पावनं च यशोदं परमं कलौ। विना ध्यानं विना दानं विना योगं यदीच्छसि। तदाश्रयस्व देवेशि लिङ्गममरसंज्ञकम् ॥७७॥ शरीरं यौवनं द्रव्यं दारान् पुत्रान् गृहांस्तथा। अस्थिरं सर्वतो ज्ञात्वा ह्यमरेशं समाश्रयेत् ॥७८॥ यावन्न ग्रसते मृत्युर्यावन्नेन्द्रियविप्लवः। यावज्जरा न देहं च जीर्यते जगदम्बिके। तावदेवामरेशाख्यं लिङ्गं रसमयं प्रिये॥७९॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि स्थानानि जगदम्बिके। अमरेशाख्यलिङ्गस्य कलां नार्घन्ति षोडशीम् ॥८०॥ महामोहेन ग्रस्तोऽयं जनः सर्वो महेश्वरि। अमरेशे च भूमिस्थे किं शोचति कलौ नरः ॥८१॥ अमरेशसमं लिङ्गं दिवि भूम्यन्तरिक्षगम्। महापापहरं देवि न भूतं न भवि-

---

कहता हूं। ७५। हे प्रिये, इसे सिद्धिलिङ्ग और बुद्धिलिङ्ग कहा गया है, यह पैदा करने वाला लिङ्ग है जो महान् तेज को बढ़ाता है। ७६। कन्या भी देता है, पवित्र करता है और कलियुग में परम यश देता है, विना ध्यान विना दान और विना योग के यदि (मोक्ष) चाहो, तो हे देवेशि, इस अमरसंज्ञक लिङ्ग का आश्रय लो।७७। शरीर, जवानी, धन, स्त्रियां, पुत्र और घर सभी को सब ओर से अस्थिर समझ कर मनुष्य अमरेश का आश्रय ले लेवे। ७८। जब तक मृत्यु ग्रस नहीं लेती, जब तक इन्द्रियां क्षीण नहीं हो जातीं और हे जगदम्बिके, जब तक बुढ़ापा शरीर को क्षीण नहीं कर देता, तब तक हे प्रिये अमरेश संज्ञक रसमय लिङ्ग (का आश्रय कर लो)। ७९। हे जगदम्बिके, त्रिलोकी में जितने भी तीर्थस्थान हैं, वह अमरेशसंज्ञक लिङ्ग की सोहलवीं कला की भी समानता नहीं करते। ८०। हे महेश्वरि, यह सब लोग तो महामोह से ग्रस्त हैं, अमरेश के भूमि पर स्थिर होने पर कलियुग में मनुष्य क्यों सोच करता है। ८१। हे देवि, अमरेश के समान महापापों को दूर करने वाला द्युलोक, भूलोक वा अन्तरिक्ष में न कोई

ष्यति ॥८२॥ भूयोभूयः किमुक्तेन नरः पातकवान् कलौ। अमरेशं समाश्रित्य मुक्त एव न संशयः ॥८३॥ इत्थं माहात्म्यमीशानि पुण्यममरनाथजम्। श्रुत्वा पठित्वा मुच्येत ब्रह्महत्यादिकोटिभिः ॥८४॥ अपेयपानान्मुच्येत तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात्। बन्धात् प्रमुच्यते बद्धो रोगाद् रोगी प्रमुच्यते ॥८ ॥ इदं प्रजननं सौम्यं श्रोतॄणां पुष्टिदायकम्। पठित्वा पाठयित्वा वा मुच्यते सर्वकिल्बिषात् ॥८६॥ आयुष्प्रदं कान्तिदं च कीर्तिदं जगदीश्वरि ; धनदं पुत्रदं चापि कन्याप्रदमनुत्तमम्। श्रुत्वा पठित्वा प्राप्नोति तीर्थजं फलमुत्तमम् ॥८७॥ इत्येष पटलो गुह्यो गोपनीयः कलौ प्रिये। श्रुतोऽनुध्यातः पठितो महापाहरः स्मृतः ॥८८॥

इति श्रीभृङ्गीशसंहितायाममरेश्वरमहिमा नाम दशमः पटलः ॥१०॥

लिङ्ग है और न होगा । ८२ । बार-बार कहने से क्या प्रयोजन है, कलियुग में पापों वाला मनुष्य अमरेश का आश्रय लेकर मुक्त ही हो जाता है इस में कोई संशय नहीं है । ८३ । हे ईशानि, इस प्रकार अमरनाथ जी से उत्पन्न पुण्य तथा माहात्म्य है। इसे पढ़ कर या सुन कर मनुष्य करोड़ों ब्रह्महत्या आदि से छूट जाता है । ८४ । पीने के अयोग्य वस्तु के पीने से तथा खाने के अयोग्य वस्तु के खाने के पाप से छूट जाता है, बन्धन से बन्धा हुआ छूट जाता है और रोगी रोग से छूट जाता है । ८५ । यह सौम्य उत्पत्तिकारक है और श्रोताओं को पुष्टि देता है। मनुष्य पढ़ कर या पढ़ा कर सभी पापों से छूट जाता है। ८६ । हे जगदीश्वरि, यह आयु, कान्ति, कीर्ति, धन, पुत्र और कन्याएं देने वाला है। इसे सुन कर या पढ़ कर तीर्थ से उत्पन्न होने वाले अत्युत्तम फल को प्राप्त करता है । ८७ । हे प्रिये, यह पटल गुप्त और गोपनीय है। कलियुग में इसे सुनने, ध्यान करने या पढ़ने से महापाप दूर हो जाते हैं। ८८ ।

श्री भृङ्गीशसंहिता में अमरेश्वर महिमा नामक

दशम पटल पूर्ण । १० ।

श्री भैरवी—श्रुत्वा श्रुत्वा महेशान् सारात् सारमनुत्तमम् । पुण्यममरनाथाख्यं लिङ्गं यत् कथितं त्वया ॥१॥ कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि कृतार्थास्मि न संशयः । क्रीतास्मि देवदेवेश तारितास्मि भवार्णवात् ॥२॥ जय शम्भो त्रिनेत्रेश जय भक्तकृपाम्बुधे । शिव शर्व जयेशान त्रिपुरासुरमर्दन ॥३॥ जय कपर्दिन् भगवन् जय शूलधराच्युत । पिनाकपाणे वरद जयान्धक-विमर्दन ॥४॥ जय भक्तजनोद्दाम-कामना-वरदेश्वर । जय भक्तिरसास्वाद-स्वादिताखिलविश्वप ॥५॥ जय घोरातिघोरेश जय पाशनिकृन्तन । जय भैरव भीमेश जय श्रीपरभैरव ॥६॥ तारितास्मि भवाम्भोधेरुद्धृता भवकर्दमात् । कथितं यत्त्वया नाथ पुण्यममरनाथजम्

श्री भैरवी बोली—हे महेश्वर, सार में श्रेष्ठ सार सुन सुन कर जो कि आप ने अमरनाथ नाम का पुण्य लिङ्ग कहा है । १ । मैं कृतार्थ हो गई हूं, मैं कृतार्थ हो गई हूं, मैं कृतार्थ हो गई हूं—इस में कोई संशय नहीं है । हे देव देवेश, मुझे आप ने अपना लिया है । और संसार सागर से पार उतार लिया है । २ । हे तीन आंखों वाले, ईश, शम्भु आपकी जय हो, हे भक्तों के लिए कृपा के सागर आपकी जय हो । हे शिव, हे शर्व, हे ईशान, हे त्रिपुरासुर को दबाने वाले आप की जय हो । ३ । हे कपर्द वाले भगवान् आप की जय हो, हे शूल धारण करने वाले अच्युत आप की जय हो । हे पिनाकपाणि, वर देने वाले आपकी जय हो, हे अन्धकासुर के नष्ट करने वाले, आपकी जय हो ।४। हे भक्तों की उत्कट कामना को वर दे कर सफल करने वाले ईश्वर आप की जय हो । हे भक्ति के रस के स्वाद से सारे संसार को स्वादित कर के रक्षा करने वाले आप की जय हो । ५ । हे घोरातिघोर ईश आपकी जय हो, हे पाश को दूर करने वाले आपकी जय हो, हे भैरव, भीम, ईश, श्री परमभैरव आपकी जय हो । ६ । मुझे आप ने भवसागर से तार दिया है और संसार के कीचड़ से निकाल दिया है जो कि आप ने अमरनाथ जी से होने वाला पुण्य बता दिया है ।७। मैं ने आप की कृपा से अमरेश का माहात्म्य सुन लिया है।

॥७॥ माहात्म्यममरेशस्य श्रुतं भवदनुग्रहात्। पुनर्वद महादेव पुण्यं ह्यमरनाथगम् ॥८॥ कस्मिन् काले स्मृता यात्रा महाफलप्रदा तु या। दर्शनात् स्पर्शनाच्चापि पूजनादपि सुन्दर ॥९॥ श्राद्धश्च ह्यमरावत्याः पञ्चनद्याश्च संगमे। दानात् किं फलमाप्नोति नरः पातकवान् कलौ ॥१०॥ विशेषतश्च किं प्रोक्तं दानं सुर-वरार्चित। यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तुर्महापातककोटिभिः। फलं ह्यमरनाथस्य विस्तारेण वदस्व मे ॥११॥ श्रीभैरवः– साधु पृष्टं त्वया देवि यतो भक्तिस्तवानघे। पुण्ये च ह्यमरेशाख्ये तीर्थे परमपावने ॥१२॥ यतः स्वं दर्शयामास श्रावण्यां च हरः स्वयम्। ततश्च कथिता यात्रा श्रावण्यां पुण्यदायिनी ॥१३॥ श्रावणे शुक्लपक्षे तु यात्रां कृत्वा विधानतः। यः प्रपश्येत् पूर्णिमायां रसलिङ्गं सनातनम्। याति शैवं पदं देवि पशुपाशविवर्जितः ॥१४॥ यः श्रावण्यां महादेवं प्रपश्येद् गिरिमध्यगम्। लिङ्गं ह्यमरनाथाख्यं स याति शिवसन्नि-

---

हे महादेव अब आप मुझे पुनः अमरनाथ जी के पुण्य को कहें। ८। हे सुन्दर यह दर्शन, स्पर्श तथा पूजन से महाफल देने वाली यात्रा किस समय में की जानी चाहिए। ९। अमरावती का श्राद्ध और पञ्चनदी के संगम पर दान कर के कलियुग में पापी मनुष्य क्या फल प्राप्त करता है। १०। हे देवताओं से पूजित, आप बताएं कि कौन सा दान विशेष कहा है जिसे सुन कर प्राणी करोड़ों महापातकों से छूट जाता है। आप अमरनाथ जी के फल को विस्तार से मुझे बताएं। ११। श्री भैरव बोले—हे देवि, तुम ने ठीक ही पूछा है, क्योंकि हे निष्पापे, तुम्हारे हृदय में भक्ति है। अमरनाथ जी के पुण्य और परम पवित्र तीर्थ में। १२। श्री शिव जी ने श्रावणी के दिन स्वयं अपना रूप दिखाया था, इस कारण यह यात्रा श्रावणी के दिन पुण्य देने वाली कही गई है। १३। श्रावण के शुक्लपक्ष में विधिपूर्वक यात्रा करके जो मनुष्य इस सनातन रसलिङ्ग के दर्शन करता है। वह पशुपाश से छूट कर हे देवि, शिव के स्थान को प्राप्त करता है। १४। जो श्रावणी के दिन पर्वतों

धिम् ॥१५॥ स्पर्शनाद् देवदेवेशि लिङ्गस्य जगदीशितुः। पापकञ्चुकनिर्मुक्तो याति सादाशिवं पदम् ॥१६॥ वाराणस्या दशगुणं प्रयागाच्च शतं समम्। सहस्रगुणितं देवि नैमिषात् कुरुजाङ्गलात् ॥१७॥ सुपुण्यफलदं प्रोक्तं मया तव प्रियेच्छया। दिव्यं वर्षसहस्रं तु लिङ्गार्बुदप्रपूजनात् ॥१८॥ सुवर्णपुष्पैर्मुक्ताभिः क्षौमैर्वरघटैस्तु यत्। तत्फलं समवाप्नोति रसलिङ्गस्य पूजनात् ॥१९॥ एकाहेन महादेवि मृगकुङ्कुमपूजनात्। कर्पूरचन्दनैश्चापि पूजयेद्ध्यमरेश्वरम्। तत्पुण्यमाप्नोति नरो ह्यमरेशस्य पूजनात् ॥२०॥ मुक्ताभिः स्वर्णपुष्पैश्च रौप्यैर्वा सुरसुन्दरि। नरो मुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ॥२१॥ अन्यैश्च विविधैर्द्रव्यैः पूजयेद् यः सुरेश्वरम्। धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैः पुण्यमाप्नोति याज्ञगम् ॥२२॥

के बीच में विराजमान महादेव जी के दर्शन करे, जो अमरनाथ लिङ्ग के रूप में हैं, वह शिव जी की समीपता को प्राप्त करता है। १५। हे देवदेवेशि, जगत् के स्वामी इस महादेव जी के लिङ्ग के स्पर्श से पाप के चोले से छूट कर सदाशिव के स्थान को प्राप्त करता है। १६। हे देवि, जा स्थान वाराणसी से दस गुना, प्रयाग से सौ गुणा और नैमिष तथा कुरुजाङ्गल से हज़ार गुना। १७। अच्छा पुण्य फल देने वाला है, तुम्हारा प्रिय चाहने से वह मैं ने कह दिया है। सहस्रों वर्ष पर्यन्त अरबों लिङ्गों के पूजन से—। १८। जो (पूजन) कि सोने के फूलों, मोतियों, रेशमी वस्त्रों, अच्छे अच्छे घड़ों से किया गया हो—जो फल मिलता है, वही फल रसलिङ्ग के पूजन से मिलता है। १९। हे महादेवि, एक दिन (मात्र) यदि कस्तूरी, कपूर तथा चन्दन से अमरनाथ जी की पूजा करे, तो वही पुण्य मनुष्य को अमरेश के इस पूजन से प्राप्त होता है। २०। हे सुरसुन्दरि, मोतियों से सोने या चान्दी के फूलों से पूजा करने पर जो फल प्राप्त होता है। हे वरानने, इस से मनुष्य निश्चित मुक्ति को प्राप्त होता है। २१। जो मनुष्य अन्य भान्ति भान्ति के द्रव्यों से महेश्वर की पूजा करता है धूप दीप और नैवेद्य चढ़ाता है, वह यज्ञ से उत्पन्न होने वाला फल प्राप्त करता है। २२। जो

आरात्रिकां महेशस्य घृताभ्यक्तां करोति यः। तिलतैलाभिषिक्तां वा स याति परमं पदम् ॥२३॥ घृतगुग्गुलसंयुक्तं यो धूपयति सुन्दरि। सर्वपापविनिर्मुक्तो याति सादाशिवं पदम् ॥२४॥ प्रदक्षिणार्थं देवेशि यो दद्याद्ध्यमरेश्वरि। पदे पदेऽश्वमेधानां सहस्रं प्राप्नुयान्नरः ॥२५॥ यो दण्डवच्च प्रणमेद्ध्यमरेशं सुरेश्वरि। तं ब्रह्मापि हरिश्चापि प्रणमन्तीति निश्चितम् ॥२६॥ यद्यत् करोति तत्रस्थः पुण्यममरसन्निधौ। तत्तदक्षयतां याति चेति सत्येन ते शपे ॥२७॥ बहुनाऽत्र किमुक्तेन भूयोभूयो वरानने। मानुष्यं दुर्लभं ज्ञात्वा देहं ज्ञात्वा जराकुलम्। सर्वं च चञ्चलं ज्ञात्वा श्रयेद् वै ह्यमरेश्वरम् ॥२८॥ ततोऽवरुह्य शैलात्तु श्रयेद् वै संगमोत्तमम्। श्राद्धं कृत्वा विधानेन तर्पयेत् पितृदेवताः ॥२९॥ मोदन्ति पितरस्तस्य नृत्यन्ति च समन्ततः। अद्य कुर्वन्ति दायादाः संगमे श्राद्धमुत्तमम् ॥३०॥

घी से महादेव जी की आरती उतारता है, या तिल के तेल से आरती करता है, वह परम पद को प्राप्त करता है ।२३। हे सुन्दरि, घी और गुग्गलु मिला कर जो मनुष्य धूप देता है। वह सभी पापों से छूट कर सदाशिव के पद को प्राप्त करता है।२४। हे देवेशि अमरेश्वरि, जो मनुष्य आधी प्रदक्षिणा करे वह प्रत्येक पद में सहस्रों अश्वमेधों के फल को प्राप्त करता है ।२५। हे सुरेश्वरि, जो दण्डवत् प्रणाम करता है उसे ब्रह्मा और विष्णु प्रणाम करते हैं, यह निश्चित है ।२६। अमरनाथ जी के समीप स्थित हो कर मनुष्य जो जो पुण्य करता है, वही पुण्य वहां पर अक्षय हो जाता है, यह तुम्हें मैं सत्य कहता हूँ।२७। हे सुमुखि, इस विषय में बार-बार बहुत कहने का क्या प्रयोजन है ? यह मनुष्य-देह दुर्लभ समझ कर और इसे बुढ़ापे से घिरा हुआ देख कर, लक्ष्मी आदि सभी कुछ चञ्चल समझ कर अमरनाथ जी की शरण लो ।२८। तब पर्वत से उतर कर उत्तम संगम का आश्रय ले। विधिपूर्वक श्राद्ध करके पितरों और देवताओं का तर्पण करे ।२९। जो ऐसा करता है उसके पितर प्रसन्न होते हैं और चारों ओर नाचते हैं कि आज हमारे सम्बन्धी संगम पर उत्तम

यथा पिण्डप्रदानैश्च शतकल्पं सुरेश्वरि । गच्छन्ति यां तृप्तिमतः पितरः सुरपूजिते ॥३१॥ क्षीर-खण्डाज्यभोज्यैश्च ब्राह्मणानां च भोजनात्। तामाप्नुवन्ति देवेशि सक्तुपिण्डाच्च संगमे ॥३२॥ कुरुक्षेत्रे प्रयागे च मकरस्थे दिवाकरे। शतकल्पं महेशानि स्नानाद् यत्फलमाप्नुयात्। तदाप्नोति नरोऽत्रैव एकाहस्नानमात्रतः ॥३३॥ चूडामणौ महायोगे कुरुक्षेत्रे च तर्पणात् । यां तृप्तिं पितरो यान्ति तां यान्ति सङ्गमे प्रिये ॥३४॥ अमरावतीपञ्चनद्योः संगमे सुरपूजिते । नारी वा पुरुषो वापि यः कुर्याच्छ्राद्धमुत्तमम् । पितरस्तस्य तृप्यन्ति शतकल्पं न संशयः ॥३५॥ गांहिरण्यं सुवासश्च क्षौमं रौप्यमपीश्वरी । मुक्तामणिं फलं वापि दत्त्वा याति सदाशिवम् ॥३६॥ विशेषतः पीठदानममरेशस्य सुन्दरि। दत्त्वा मुक्तिमवाप्नोति सत्यं सत्यं वरानने ॥३७॥ श्री भैरवी—किंविधं

श्राद्ध कर रहे हैं। ३०। हे सुरेश्वरि, जैसे सौ कल्प तक पिण्ड देने से पितर तृप्त होते हैं, वैसे ही सुरपूजिते, यहां पर पिण्ड देने से पितर तृप्त होते हैं। ३१। खीर, खाण्ड तथा घी के भोजन बना कर ब्राह्मणों के भोजन से जो तृप्ति होती है। हे देवेशि, वही तृप्ति संगम में सत्तू के पिण्ड देने से होती है। ३२। मकर में सूर्य होने पर कुरुक्षेत्र तथा प्रयाग में सौ कल्प तक स्नान करने से जो फल मिलता है, हे महेशानि, वही फल यहां पर मनुष्य एक दिन के स्नान से प्राप्त करता है। ३३। हे प्रिये, चूड़ामणि नामक महायोग में कुरुक्षेत्र में तर्पण करने से पितर जिस तृप्ति को प्राप्त करते हैं वही तृप्ति संगम में है। ३४। हे सुरपूजिते, अमरावती और पञ्चतरणी के संगम पर जो नारी अथवा पुरुष उत्तम श्राद्ध करता है उसके पितर सौ कल्प पर्यन्त तृप्त हो जाते हैं, इस में कोई संशय नहीं। ३५। हे देवि, गौ, सोना, अच्छे वस्त्र, रेशमी वस्त्र, चांदी, मोती, मणि या फल भी दान करके (मनुष्य) सदाशिव को प्राप्त करता है। ३६। हे सुन्दरि, विशेष करके यहां अमरेश के पीठ (आसन) का दान कहा है। हे सुमुखि, इस का दान कर के सच ही मुक्ति प्राप्त होती है। ३७। श्री

पीठदानं च शिवस्य भगवंस्त्वया । कथितं तन्महेशान वद मे हितकाम्यया ।।३८।। श्री भैरवः—पलपञ्चकमादाय यवपिष्टस्य सुन्दरि । सुचतुर्भद्रकं कृत्वा लेपयित्वा च कुंकुमैः । ३९।। कर्पूरचन्दनैश्चापि मृगजैश्च महेश्वरि । चतुष्कोणे तु संस्थाप्यं सुवर्णानां चतुष्टयम् ।।४०।। मध्ये सुवर्णमेकं च स्थापयित्वा सुरोत्तमे । अथवा रौप्यमुद्राणां पञ्चकं मनुजेश्वरि ।।४१।। निष्काणामपि चेशानि स्थापयित्वा सुरोत्तमे । अर्चयित्वा गन्धपुष्पैर्ब्राह्मणाय समर्पयेत् ।।४२।। आधारशक्त्यादिमन्त्रैः पूजयित्वा स वासयेत् । वस्त्रैः श्वेतपटैर्दिव्यैस्तथा यज्ञोपवीतकैः ।।४३।। दक्षिणाभिश्च निष्कैश्च मन्त्रमेनं समुच्चरेत् । *"यात्रासाफल्यहेतोश्च ह्यमरेशस्य चाज्ञया ।।४४।। पीठं मयार्पितं दिव्यं सुवासोभिरलंकृतम् । मृत्युञ्जय महादेव मया संसारभीरुणा ।।४५।। अर्पितं त्वत्स्वरूपाय ब्राह्मणाय

भैरवी बोलीं—हे भगवन् महेश्वर, आप ने किस प्रकार का शिव जी का पीठदान कहा है, वह मुझे भली भावना से बताएं । ३८ । श्री भैरव बोले—हे सुन्दरि पांच पल (एक पल = तीन तोले चार माशे का होता है) जौ की पीठी ले कर उस पर अच्छा सा चतुर्भद्र बना कर केशर का लेप कर के । ३९ । कपूर, चन्दन और कस्तूरी लगा कर हे महेश्वरि, उस के चारों कोनों में सोने के चार टुकड़े रखने, बीच में भी सोने का एक टुकड़ा रखना ।४०। हे सुरोत्तमे, मनुजेश्वरि, अथवा पांच चांदी के टुकड़े (रुपए) रखने । ४१ । अथवा हे ईशानि, उस में निष्क रख कर, हे सुरोत्तमे, तिलक और पुष्पों से पूजा कर के ब्राह्मण को समर्पण कर दे । ४२ । आधारशक्ति आदि मन्त्रों से वस्त्रों से दिव्य श्वेतपटों से तथा यज्ञोपवीतों से । ४३ । दक्षिणा से, निष्कों से पूजा कर के इस मन्त्र का उच्चारण करे । यात्रा की सफलता के लिए और अमरनाथ जी की आज्ञा से । ४४ । मैं ने दिव्य पीठ पूजित कर सुवस्त्रों से अलंकृत कर के अर्पण किया है । हे मृत्युञ्जय महादेव मैं ने जन्म-मरण रूपी संसार

---

*पीठदान के लिए मन्त्र ।

महात्मने। इदं गृहाण विप्रेश सुरूपं भवशासनात् ॥४६॥ पीठं ह्यमरनाथस्य महापापापनुत्तये। यन्मया दुष्कृतं किञ्चित् कृतं गुर्वथवापि वा ॥४७॥ भ्रूणहत्यादिकं वाऽपि ब्रह्महत्यादिकं तथा। गुरुहत्यादिकं वापि मातृहत्यादिकं च यत् ॥४८॥ स्वर्णस्तेयादिकं चापि सुरापानमपीश्वरि। गोहत्याऽनृतभाषित्वं क्रोधलोभमथापि वा ॥४९॥ परदाराभिगामित्वं परीवादं परस्य च। लघु सूक्ष्मं कृतं वापि दुष्कृतं कर्म किञ्चन ॥५०॥ तत्सर्वं नाशमायातु पीठदानान्महेश्वर।" इति मन्त्रेण देवेशि पीठं विप्राय चार्पयेत् ॥५१॥ इत्थं मया प्रोक्तमिदं तवानघे दानं च पीठस्य परं रहस्यम्। ददस्व देवेशि परं किमन्यैर्दानैः कलौ स्वल्पफलप्रदैश्च ॥५२॥ इदं रहस्यं परमं नाख्येयं यस्य कस्य चित्। गोपनीयं गुह्यतमं कलौ सिद्धिप्रदं नृणाम् ॥५३॥ लक्ष्म्या कृतमिदं दानं पार्वत्या

से डरते हुए। ४५। आपके रूप महात्मा ब्राह्मण को इसे अर्पण कर दिया है। हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ शिव जी की आज्ञा से आप इसे ग्रहण करो। ४६। यह अमरनाथ जी का पीठ महापापों को दूर करने के लिए है, जो कोई पाप मैं ने बड़ा अथवा छोटा किया है। ४७। भ्रूणहत्या की है, ब्रह्महत्यादि की है, अथवा गुरुहत्या या मातृहत्यादि की है। ४८। सोने की चोरी आदि या हे महादेवि सुरापान भी किया है, गोहत्या की हो, झूठ बोला हो अथवा क्रोध लोभ आदि किया हो। ४९। परदारागमन किया हो। छोटा या सूक्ष्म कोई पाप किया हो। ५०। वह सभी इस पीठदान से हे महेश्वर नष्ट हो जावे, हे देवेशि, यह मन्त्र पढ़ कर पीठ ब्राह्मण को अर्पण कर देवे। ५१। इस प्रकार हे पापरहिते, मैं ने यह पीठ का परम रहस्य और दान आप को बताया है। हे देवेशि, आप इस का दान करें, इस से भिन्न अन्य दानों का क्या फल है, जो कि कलियुग में थोड़ा फल देने वाले हैं। ५२। यह परम रहस्य है जो कि हर किसी को नहीं बताना चाहिए। यह गोपनीय है, गुह्यतम है और कलियुग में मनुष्यों को सिद्धि देने वाला है। ५३। हे महेश्वरि, यह दान

च महेश्वरि । सायुज्यमपि तत्स्थाने प्राप्नुतः परमेश्वरि ॥५४॥ ततो यायान्महाग्रामे मामलाख्ये महेश्वरि । महागणपतिं तत्र पूजयेद् बलिभिः प्रिये ॥५५॥ विविधैर्गन्धदीपैश्च मोदकैश्च महेश्वरि । पशूपहारैः पुष्पैश्च पूजनीयः प्रयत्नतः ॥५६॥ प्रसाद्य गणपं तत्र नानाबल्युपहारकैः । प्रयान्नवदले गङ्गां यष्टिं तत्रार्पयेद् बुधः ॥५७॥ *"यष्टे ह्याधारभूतासि साक्षिभूतासि वै यतः । मत्कर्मणश्च तीर्थस्य यात्रायामपि सुन्दरि ॥५८॥ यष्टे सृष्टिस्वरूपासि स्थितिप्रलयकारिणी । तस्मान्मे पापसंघांश्च हित्वा याहि स्वकं पदम् ॥५९॥ गङ्गे प्रयाहि देवस्य शिरसि धूर्जटेः प्रिया । पुरतो देवदेवस्य यात्रां मम निवेदय" ॥६०॥ इति मन्त्रेण देवेशि यष्टिं गङ्गाम्भसि क्षिपेत् । स्नात्वा पातालगङ्गायां ततो यायात् स्वकं गृहम् ॥६१॥ एवं कृत्वा तु देवेशि

लक्ष्मी और पार्वती ने किया है । हे परमेश्वरि, वहीं पर वह दोनों एकत्र भी होती हैं । ५४ । हे महेश्वरि, तब मामल नाम के महाग्राम में जावे । हे प्रिये, वहां पर बलियों से महागणपति की पूजा करे । ५५ । हे महेश्वरि, कई प्रकार के गन्धदीपों से और मोदकों से, पशु और पुष्पों के उपहारों से उस की यत्नपूर्वक पूजा करे । ५६ । वहां पर गणेश जी को नाना बलि और उपहारों से प्रसन्न कर के नवदल गङ्गा में जावे और वहां पर विद्वान् छड़ी को अर्पण करे । ५७ । हे छड़ि, चूंकि तू आधारभूत है और साक्षिभूत है, मेरे कर्म की और मेरी तीर्थ यात्रा की—हे सुन्दरी । ५८ । हे छड़ी तू सृष्टिस्वरूप है स्थिति और प्रलय को करने वाली है इस कारण मेरे पाप समूहों को दूर कर के अपने स्थान को जाओ । ५९ । हे गङ्गे तुम धूर्जटिदेव (शिव) के सिर पर चली जाओ और देव देव से जा कर मेरी यात्रा को निवेदन कर दो । ६० । हे देवेशि, इस मन्त्र से छड़ी को गङ्गाजल में फेंक देवे । पातालगङ्गा में स्नान कर के अपने घर जावे । ६१ । हे देवेशि, इस प्रकार नारी अथवा पुरुष

*छड़ी के छोड़ने का मन्त्र

नारी वा पुरुषोऽपि वा। वेदपारायणं पुण्यं प्राप्नोत्येव न संशयः ॥६२॥ यात्रामेवंविधां कृत्वा पुण्याममरनाथजाम्। मुक्तिमेवमवाप्नोति विना चेन्द्रियनिग्रहैः ॥६३॥ इहलोके सुखं भुक्त्वा ह्यन्ते सायुज्यमाप्नुयात्। इति गुह्यं मयाख्यातं फलममरनाथजम् ॥६४॥ यच्छ्रुत्वा मुच्यते जन्तु-र्महापातककोटिभिः। इत्येष पटलो गुह्यो महापापप्रणाशकः। श्रुतश्च पठितश्चापि हयमेधादियागदः ॥६५॥

इति श्रीभृङ्गीशसंहितायाममरनाथमाहात्म्यवर्णनं नामैकादशः पटलः ॥११॥

—भद्रं बोभवीतु—

वेदपारायण के पुण्य को प्राप्त करता है, इस में कोई संशय नहीं है।६२। इस प्रकार श्रीअमरनाथ जी की पुण्य यात्रा को कर के इन्द्रियनिग्रह के विना ही मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। ६३। इस लोक में सुख भोग कर अन्त में भगवान् से मिल जावेगा। इस प्रकार मैं ने यह अमरनाथ जी से होने वाला गुह्य फल कह दिया है। ६४। जिसे सुन कर मनुष्य करोड़ों महापापों से छूट जाता है। यह गुह्य पटल महापापों को दूर करता है। इस के सुनने या पढ़ने से अश्वमेध आदि यज्ञों के फल मिल जाते हैं। ६५।

श्रीभृङ्गीशसंहिता में अमरनाथमाहात्म्यवर्णननामक
ग्यारहवां पटल पूर्ण।

—: ❀ :—

सब का भला करो भगवान्।

—: ० :—

श्री अमरनाथ-कश्मीर-यात्रा

भाग ३

विविध शिवस्तोत्र-संग्रहः

—कीर्तन के लिए श्री अमरनाथ यात्रा में पढ़ने योग्य स्तोत्रों का संग्रह—

वपुः प्रादुर्भावादनुमितमिदं जन्मनि पुरा,
पुरारे न प्रायः क्वचिदपि भवन्तं प्रणतवान् ।
नमन्मुक्तः संप्रत्यहमतनुरग्रेऽप्यनतिभाङ्,
महेश क्षन्तव्यं तदिदमपराधद्वयमपि ॥

१. शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्* ।

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय । नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै नकाराय नमः शिवाय ॥१॥ मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वर-प्रमथनाथ-महेश्वराय । मन्दारपुष्पबहुपुष्प-

---

'हे भगवन्' यह शरीर धारण करने से अनुमान किया कि पूर्वजन्म में मैं ने कभी आप को प्रणाम नहीं किया । अब प्रणाम कर देने से मेरा शरीर छूट जावेगा इस कारण आगे भी नमस्कार नहीं कर पाऊंगा । हे महेश, कृपा कर मेरे इन दोनों ही अपराधों को क्षमा करना ॥

सर्पराज का हार पहने हुए, तीन आंखों वाले, भस्म का अङ्गराग (powder) लगाये हुये, महेश्वर, नित्य, शुद्ध-स्वरूप, दिशारूपी वस्त्रों वाले उस नकार रूपी शिव जी को नमस्कार हो । १ । मन्द बहने वाली गंगा के जलरूपी चन्दन से शोभित नन्दीगण और प्रमथगणों के नाथरूपी महेश्वर, मन्दार के फूलों तथा बहुत से फूलों से पूजित मकार रूपी शिव जी को नमस्कार

---

*इस स्तोत्र में 'नमः शिवाय' के पांच अक्षरों पर पांच श्लोक हैं ।

सुपूजिताय तस्मै मकारायनमः शिवाय ॥२॥ शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्द-सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय। श्री नीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै शिकाराय नमः शिवाय ॥३॥ वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमार्य-मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय। चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै वकाराय नमः शिवाय ॥४॥ यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय। दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै यकाराय नमः शिवाय ॥५॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्। १।

२. शिवापराधक्षमापनस्तोत्रम्।

आदौ कर्मप्रसङ्गात्कलयति कलुषं मातृकुक्षौ स्थितं मां, विण्मूत्रा-मेध्यमध्ये कथयति नितरां जाठरो जातवेदाः। यद्यद्वै तत्र दुःखं व्यथयति नितरां शक्यते केन वक्तुं क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिव भोः श्रीमहादेव शम्भो ॥१॥ बाल्ये दुःखातिरेकान्मललुलितवपुः स्तन्यपाने

हो। २। गौरी के मुखकमल के लिए सूर्यरूपी शिव को, जो कि दक्ष के यज्ञ को नाश करने वाले हैं। श्री नीलकण्ठ और वृष की ध्वजा वाले शिकार रूपी शिव जी को नमस्कार हो। ३। वसिष्ठ, अगस्त्य, गौतम आदि मुनिश्रेष्ठों और देवताओं से पूजित शेखर वाले, चन्द्रमा-सूर्य तथा अग्निरूपी तीन नेत्रों वाले वकार रूपी शिव जी को नमस्कार हो। ४। यक्षस्वरूप, जटाओं को धारण किये हुए पिनाक धनुष को हाथ में लिए हुए सनातन दिव्य दिशाओं रूपी वस्त्र वाले यकार रूपी शिव देव को नमस्कार हो। ५।

श्री शङ्कराचार्य जी का लिखा शिव-पञ्चाक्षरस्तोत्र पूर्ण। १।

आदि में कर्मों के प्रसङ्ग से माता की कोख में मुझे पाप घेर लेता है और विष्ठा मूत्र जैसी अमेध्य वस्तुओं के बीच में पड़े होने पर भी जठराग्नि खूब सताती है। उस अवस्था में वहां पर जो जो भी दुःख हैं उन्हें कौन वर्णन कर सकता है, हे शिव महादेव शम्भो आप कृपा कर मेरे अपराध को क्षमा करें। १। बचपन में दुःखों की अधिकता से शरीर मल में ही लिपटा रहता है और दूध

पिपासा नो शक्यश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता जन्तवो मां तुदन्ति। नाना रोगादिदुःखाद् रुदनपरवशः शङ्करं न स्मरामि क्षन्तव्यो मेऽपराधः० ॥२॥ प्रौढोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरैः पञ्चभिर्मर्मसन्धौ दष्टो नष्टो विवेकः सुतधनयुवतिस्वादुसौख्ये निषण्णः शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढं क्षन्तव्यो० ॥३॥ वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विगतगतिमतिश्चाधिदैवाधितापैः पापै रोगैर्वियोगैस्त्वनवसितवपुः प्रौढिहीनं च दीनम्। मिथ्यामोहाभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्जटेर्ध्यानशून्यं क्षन्तव्यो० ॥४॥नो शक्यं स्मार्तकर्म प्रतिपदगहनप्रत्यवायाकुलाख्यं श्रौते वार्ता कथं मे द्विजकुलविहिते ब्रह्ममार्गे सुसारे। ज्ञातो धर्मो

पीने की प्यास इन्द्रियों से सही नहीं जाती, संसार के गुणों से उत्पन्न प्राणी मुझे दुःखी करते हैं। रोग आदि नाना दुःखों से रोने के लिये विवश होकर भी मैं शङ्कर को स्मरण नहीं करता हूं—हे शिव महादेव शम्भो आप कृपा कर मेरे अपराध को क्षमा करें।२। मैं प्रौढ़ हुआ और जवानी आई तो विषयरूपी पांच विषधरों (सांपों) ने मुझे मर्मसन्धि में काट डाला, इस से मेरा विवेक नष्ट हो गया और मैं पुत्र धन और स्त्री आदि के स्वादु सुख में फंस गया। ओह मेरा हृदय मान और गर्व के घोड़े पर चढ़ कर शिवसंबन्धिनी चिन्ता से रहित हो गया। हे शिव महादेव शम्भो आप कृपापूर्वक मेरे अपराध को क्षमा करें।३। बुढ़ापे में इन्द्रियों की गति और बुद्धि शिथिल हो गए तो अधिदैव मानसिक चिन्ताओं और सन्ताप से, पापों से, रोग से. वियोग से असमाप्त शरीर वाला प्रौढिरहित तथा दीन मेरा मन भगवान् शिव जी का ध्यान छोड़ कर मिथ्या मोह और अभिलाषा से घूमता है, हे शिव महादेव शम्भो आप कृपा पूर्वक मेरे अपराधों को क्षमा करें।४। मैं तो स्मृतियों से प्रदर्शित कर्म को ही प्रतिपद में कठिन और विघ्नों से घिरा कहा जाने वाला मानता हूं, तब ब्राह्मण कुल से विहित श्रौतकर्म में मेरी कल्पना भी कहां हो सकती है, जो ब्रह्ममार्ग है और सारपूर्ण

विचारैः श्रवणमननयोः किं निदिध्यासितव्यं क्षन्तव्यो० ॥५॥ स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिकृते नाहृतं गाङ्गतोयं पूजार्थं वा कदाचिद्बहुतरगहनात् खण्डबिल्वीदलानि। नानीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पैस्त्वदर्थं क्षन्तव्यो० ॥६॥ दुग्धैर्मध्वाज्ययुक्तैर्दधिसितसहितैः स्नापितं नैव लिङ्गं नोलिप्तं चन्दनाद्यैः कनकविरचितं पूजितं न प्रसूनैः। धूपैः कर्पूरदीपैर्विविधरसयुतैर्नैव भक्ष्योपहारैः क्षन्तव्यो० ॥७॥ ध्यात्वा चित्ते शिवाख्यं प्रचुरतरधनं नैव दत्तं द्विजेभ्यो हव्यं ते लक्षसङ्ख्यैर्हुतवहवदने नार्पितं बीजमन्त्रैः। नो तप्तं गाङ्गतीरे व्रतजपनियमैः रुद्रजाप्यैर्न वेदैः क्षन्तव्यो० ॥८॥ स्थित्वा स्थाने सरोजे प्रणवमयमरुत्कुडले

है। धर्म को विचारों से, श्रवण और मनन से समझा; निदिध्यासन तो क्या करना? हे शिव महादेव शम्भो आप कृपापूर्वक मेरे अपराध को क्षमा करें।५। प्रातःकाल स्वयं स्नान कर के शिव पूजा के स्नान के लिए मैं ने गङ्गाजल नहीं लाया और न ही घने जंगल से कभी पूजा के लिए बिल्व पत्रों को लाया। न ही सरोवर में फूले हुई कमलों की माला गन्ध पुष्प के रूप में आप के लिए लाई, हे शिव महादेव शम्भो आप कृपा कर मेरे अपराध को क्षमा करें।६। शहद और घी से युक्त दही और शक्कर डाले हुए दूध से कभी भी मैं ने शिवलिङ्ग को स्नान नहीं करवाया, नहीं उस पर चन्दन आदि का लेप किया, सोने से बना कर फूलों से पूजा न की। धूप कपूर के दीपक, कई रसों से युक्त भक्ष्य उपहार भी कभी प्रस्तुत नहीं किए। हे शिव महादेव शम्भो आप कृपापूर्वक मेरे अपराध को क्षमा करें।७। शिव जी का ध्यान कर के ब्राह्मणों को कभी बहुत सा धन नहीं दिया और न लाख संख्या के बीजमन्त्रों से अग्नि में हव्य द्रव्य को डाला। गङ्गा जी के तीर पर व्रत-जप-नियमों से तप नहीं किया और न ही वेद के वह मन्त्र पढ़े जिन से रुद्र का जप होता हो। हे शिव महादेव शम्भो कृपापूर्वक मेरे अपराध को क्षमा करें।८। पद्मासन में स्थिर हो कर ओंकार रूप वायु का कुण्डल बना कर सूक्ष्म मार्ग

सूक्ष्ममार्गे शान्ते स्वान्ते प्रलीने प्रकटितविभवे ज्योतिरूपे पराख्ये। लिङ्गज्ञे ब्रह्मवाक्ये सकलतनुगतं शंकरं न स्मरामि क्षन्तव्यो० ॥९॥ नग्ना निःसङ्गशुद्धस्त्रिगुणविरहितो ध्वस्तमोहान्धकारो नासाग्रे न्यस्त-दृष्टिर्विदितभवगुणो नैव दृष्टः कदाचित्। उन्मन्याऽवस्थया त्वां विगत-कलिमलं शङ्करं न स्मरामि क्षन्तव्यो० ॥१०॥ चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे। दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे मोक्षार्थं कुरु चित्त-वृत्तिमखिलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥११॥ किं वाऽनेन धनेन वाजिक-रिभिः प्राप्तेन राज्येन किं किं वा पुत्रकलत्रमित्रपशुभिर्देहेन गेहेन किम्। ज्ञात्वैतत्क्षणभङ्गुरं सपदि रे त्याज्यं मनो दूरतः स्वात्मार्थं गुरु-

---

में अन्तःकरण को शान्त करके निश्चेष्ट ज्योतिरूप परब्रह्म में स्थित हो कर लिङ्ग के ज्ञाता, सारे शरीर में व्याप्त, शङ्कर को मैं स्मरण नहीं करता हूं। हे शिव महादेव शम्भो आप कृपा पूर्वक मेरे अपराध को क्षमा करें। ९। नङ्गा, सङ्गरहित होने से शुद्ध, तीनों गुणों (सत्त्व, रजस्, तमस्) से रहित मोह के अन्धकार को नष्ट कर के नासा के अगले भाग में दृष्टि लगा कर शिव के गुणों को जानने वाला बन गया हूँ, उसे कभी नहीं देखा। अपने उथले मन वाली अवस्था से कलिमल से रहित शिवरूपी आप को मैं कभी स्मरण नहीं करता हूँ। हे शिव महादेव शम्भो आप कृपा पूर्वक मेरे अपराध को क्षमा करें।१०। हे मनुष्य, यदि तू मोक्ष चाहता है तो चन्द्रमा से प्रकाशित सिर वाले, कामदेव को नष्ट करने वाले, गङ्गा के धारण करने वाले, शान्ति करने वाले, सांपों से भूषित कानों और कण्ठ वाले, आंखों में निकलती आग वाले, हाथियों के चमड़े से बने सुन्दर वस्त्रों को धारण करने वाले, त्रिलोकी के सार रूप भगवान् शिव में पूरी चित्तवृत्ति को लगा दे, अन्य कर्मों के करने में तेरा क्या प्रयोजन है।११। इस धन हाथी घोड़ों या राज्य हो के प्राप्त करने से क्या फल है? पुत्र, पत्नी, मित्र, पशु, देह अथवा घर से ही क्या प्रयोजन है?

वाक्यतो भज भज श्रीपार्वतीवल्लभम् ।।१२।। आयुर्नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं याति क्षयं यौवनं प्रत्यायान्ति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः । लक्ष्मीस्तोयतरङ्गभङ्गचपला विद्युच्चलं जीवितं तस्मान्मां शरणागतं शरणद त्वं रक्ष रक्षाधुना ।।१३।। करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् । विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ।।१४।।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यकृतं शिवापराधक्षमापनस्तोत्रम् ।।२।।

३. निर्वाणदशकम्

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायुर् न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः । अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्धस्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ।।१।। न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा न मे धारणाध्यानयोगादयो-

---

इस सब को क्षण-भङ्गुर समझ कर झट से मन को दूर से ही छोड़ देना चाहिए, अपने आत्मा के लिए गुरुवाक्य से श्री पार्वतीवल्लभ भगवान् शिव जी का भजन करो । १२ । देखते ही देखते प्रतिदिन आयु नष्ट होती जाती है जवानी क्षीण हो रही है, गए हुए दिन फिर लौट कर नहीं आते, यह समय संसार का भक्षण कर रहा है । लक्ष्मी जल की तरङ्गों के समान चञ्चल है, यह जीवन बिजली के समान चञ्चल है । इस कारण हे शरण देने वाले भगवान् आप मुझ शरणागत की अब रक्षा करो । १३ । हाथों पैरों से किया हुआ, वाणी और शरीर से किया हुआ, कर्मों से किया हुआ या मन से किया हुआ जो भी अपराध हो वह चाहे विहित हो या अविहित हो उस सब को आप क्षमा करें हे करुणासागर श्रीमहादेव शम्भो आपकी जय हो ।

श्रीशङ्कराचार्य रचित शिवपराधक्षमापनस्तोत्र पूर्ण । २ ।

मैं न भूमि हूँ, न जल हूं, न तेज हूं, न वायु हूँ और न ही आकाश हूँ (इस प्रकार आत्मा पांचों तत्त्वों से भिन्न है), न इन्द्रियां हूं और न ही इन सब का समूह हूं । अनैकान्तिक (न्याय के हेतु) होने से आत्मा की सिद्धि एक-

ऽपि । अनात्माश्रयोऽहं ममाध्यासहानात् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केव-लोऽहम् ॥२॥ न माता पिता वा न देवा न लोका न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति । सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलो-ऽहम ॥३॥ न साङ्ख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा । विशिष्टानुभूत्या विशुद्धात्मकत्वात् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलो-ऽहम् ॥४॥ न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं न पीनं न कुब्जं न ह्रस्वं न दीर्घम् । अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलो-ऽहम् ॥५॥ न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्तिर् न विश्वो न वा तैजसः प्राज्ञ-को वा । अविद्यात्मकत्त्वात् त्रयाणां तुरीयं तदेकोऽवशिष्टः शिवः

मात्र सुषुप्ति ही में हो सकती है, उसी से सिद्ध अवशिष्ट रूप मैं वही केवल शिव हूं । १ । मेरे न वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) हैं, न वर्णाश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास) हैं, न आचार (स्मृति से बताए हुए) हैं और न ही धर्म (विविधसंप्रदाय) हैं, मेरे लिए धारणा, ध्यान या योगादि भी नहीं हैं। मैं आत्मा का आश्रय भी नहीं हूँ। यह मेरेपन का अध्यास छूट जाने पर अवशिष्ट मैं केवल शिवरूप हूँ । २ । मैं न माता हूँ, न पिता हूँ, न देव हूँ, न लोक हूँ, न वेद हूँ , न यज्ञ हूँ और न ही तीर्थरूप कहा गया हूँ। सुषुप्ति अवस्था में शून्य रूप का भी निरास होने के कारण मैं वही अवशिष्ट केवल शिवरूप ही हूँ । ३ । मैं न सांख्य-सिद्धांत हूँ, न शैव हूँ और न पाञ्चरात्र हूं, न जैन हूँ और न ही मीमांसक आदि का मत हूँ । विशिष्ट अनुभव होने से तथा विशुद्ध आत्म-रूप होने से वही अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ । ४ । न ही मैं सफेद (रंग) हूँ, न ही काला हूँ, न लाल हूँ ,न पीला हूँ, न मोटा हूँ, न कुबड़ा हूं , न बौना हूँ और न ही लम्बा हूं । रूपहीन तथा ज्योतिरूप होने से मैं वही अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ । ५ । न मैं जाग्रत अवस्था हूँ, न स्वप्न अवस्था हूँ और न ही सुषुप्ति अवस्था हूं , न ही मैं विश्वसंज्ञक (स्वप्नावस्था वाला) हूँ, न तैजस

केवलोऽहम् ॥६॥ न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः। स्वरूपावबोधाद् विकल्पासहिष्णुस् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥७॥ न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न बाह्यं न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वापरादिक्। वियद्व्यापकत्वाद् अखण्डैकरूपस् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥८॥ अभिव्यापकत्वाद्वितत्वात् प्रयोगात् स्वतःसिद्धभावाद् अनन्याश्रयत्वात्। जगत्तुच्छमेतत् समस्तं तदन्यस् तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥९॥ न चैकं तदन्यद् द्वितीयं कुतः स्यात् न चाकेवलत्वं न वा केवलत्वम्। न शून्यं न चाशून्यमद्वैतकत्वात् कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥१०॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं निर्वाणदशकं स्तोत्रम् ॥३॥

(सुषुप्त्यवस्था वाला) हूँ और न ही प्राज्ञ (जाग्रदवस्था में) हूँ। इन तीनों के अविद्यारूप होने से मैं वही तुरीयरूप (तुरीयावस्था वाला) अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ। ६। मेरा कोई शासन करने वाला नहीं है न शास्त्र है, न शिष्य है, न शिक्षा है, न कोई तू का रूप है और न ही मैं का रूप है, न ही यह प्रपञ्च है। स्वरूप की जानकारी के कारण विकल्पों को न सहन करने वाला मैं अवशिष्ट वही केवल शिव हूँ। ७। मैं न ऊपर (या ऊर्ध्वरूपी) हूँ, न नीचे हूँ, न अन्तर्वर्ती हूँ, न बाह्यवर्ती हूँ, न मध्य में हूँ, न तिर्यक् (टेढा) रूप हूँ, न पूर्व अथवा पश्चिम दिशारूपी हूँ। आकाश में व्यापक होने के कारण एक अखण्डरूप वाला होने से मैं वही अवशिष्ट केवल शिव रूप हूँ।८। सर्वव्यापक होने से, तत्त्वरहित होने पर भी प्रयोग से, स्वतः सिद्धभाव से तथा अनन्याश्रय होने से यह सारा संसार तुच्छरूप है। मैं इस से भिन्न वही अवशिष्ट केवल शिवरूप हूँ। ९। उस से भिन्न कोई भी नहीं है अतः द्वितीय होने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता, न वह अकेवल है और न ही केवल है। अद्वैत होने से न वह शून्यरूप है और न ही अशून्यरूप है, मैं सभी वेदान्तों से सिद्ध उस को कैसे बताऊं। १०।

श्री शङ्कराचार्यविरचित निर्वाणदशक स्तोत्र पूर्ण। ३।

४. अथ निर्वाणाष्टकप्रारम्भः*

मनोबुद्ध्यहङ्कारचित्तानि नाहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राण नेत्रे। न
च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश् चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥१॥
न च प्राणसंज्ञो न वै पञ्चवायुर् न वा सप्तधातुर्न वा पञ्चकोशः। न
वाक्पाणिपादं न चोपस्थपायुश् चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥२॥
न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः। न धर्मो
न चार्थो न कामो न मोक्षश् चिन्दानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥३॥
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं न मन्त्रो न तीर्थं न देवा न यज्ञाः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥४॥
न मृत्युर्न शङ्का न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता च जन्म। न
बन्धुर् न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश् चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥५॥

मन, बुद्धि, अहङ्कार और चित्तरूप भी मैं नहीं हूँ, न ही श्रोत्र और जिह्वारूप हूँ, न ही प्राण और नेत्ररूप हूं, न मैं आकाशरूप हूँ और न ही भूमिरूप हूँ, न तेजोरूप हूँ न ही वायुरूप हूँ। मैं तो केवल चित्स्वरूप और आनन्द स्वरूप शिव हूँ, शिव हूँ। १। न मैं प्राणसंज्ञक हूँ, न पञ्चवायुरूप हूँ न सप्तधातुरूप हूँ और न ही पञ्चकोष हूँ, न ही मैं वाणी, पाणि (हाथ) और पैर रूप हूँ और न उपस्थ अथवा मलेन्द्रिय हूँ। मैं तो चित्स्वरूप तथा आनन्द-रूप शिव हूँ, शिव हूँ। २। मेरे द्वेष अथवा राग नहीं हैं और न ही लोभ और मोह हैं, न मेरे मद है न मुझ में मात्सर्यभाव है। न धर्म है न अर्थ है न काम है और न ही मोक्ष है, मैं तो केवल चित्स्वरूप और आनन्द रूप शिव हूँ, शिव हूँ।३। मैं न पुण्य हूँ न पाप हूँ न सुख हूँ न दुःख हूँ, न मन्त्र हूँ न तीर्थ हूँ न देव हूँ और न ही यज्ञ हूँ। मैं भोजन नहीं हूँ न भोज्य हूँ और न ही भोक्ता हूँ। मैं तो चित्स्वरूप और आनन्दरूप शिव हूँ, शिव हूँ। ४। न मेरी मृत्यु है न मुझे मृत्यु की शंका ही है, मेरा जातिभेद नहीं है, न मेरा पिता है,

*इसी स्तोत्र के कीर्तन का श्री युवराज महोदय ने संकेत किया है।

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् । न
चासङ्गतं नैव मुक्तिर्न मेयश् चिन्दानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥६॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं निर्वाणषट्कस्तोत्रम् ॥ ४ ॥

५. आत्मपञ्चकस्तोत्रम्

नाहं देहो नेन्द्रियाण्यन्तरङ्गं नाहङ्कारः प्राणवर्गो न बुद्धिः ।
दारापत्यक्षेत्रवित्तादिदूरः साक्षी नित्यः प्रत्यगात्मा शिवोऽहम् ॥१॥
रज्ज्वज्ञानाद् भाति रज्जुर्यथाऽहिः स्वात्माज्ञानादात्मनो जीवभावः ।
आप्तोक्त्या हि भ्रान्तिनाशे स रज्जुर्जीवो नाहं देशिकोक्त्या शिवोऽहम् ॥२॥
आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं सत्याज्ञानानन्दरूपे विमोहात् ।
निद्रामोहात् स्वप्नवत्तन्न सत्यं शुद्धः पूर्णो नित्य एकः शिवोऽहम् ॥३॥

न माता है न ही जन्म है । न मेरा कोई सम्बन्धी है, न मित्र है, न गुरु है, न शिष्य है, मैं तो चित्स्वरूप और आनन्दस्वरूप शिव हूँ, शिव हूँ । ५ । मैं निर्विकल्प हूँ निराकार रूप हूँ क्योंकि मैं सर्वत्र हूँ और सभी इन्द्रियों में विभु (व्यापक) हूं, न ही मैं असंगत हूँ, न ही मुक्ति हूँ और न ही प्रमाण के योग्य हूं । मैं तो चित्स्वरूप और आनन्दरूप शिव हूँ, शिव हूँ । ६ ।

श्री शङ्कराचार्यविरचित निर्वाणषट्कस्तोत्र पूर्ण । ४ ।

न मैं देहरूप हूं, न इन्द्रियरूप हूँ, न अंतरङ्गरूप हूँ, न अहंकार हूँ, न प्राणों का वर्ग हूं और न ही बुद्धि हूं । दारा, सन्तति, क्षेत्र, वित्त आदि से दूर साक्षीरूप नित्य अन्तरात्मा रूप मैं शिव हूं । १ । जैसे रस्सी के ज्ञान न होने से रस्सी सांप जैसी लगती है, उसी प्रकार आत्मा के रूप का ज्ञान न होने से हम सब जीवात्मा के रूप हैं । जब हमें आप्त लोग समझा देते हैं तो भ्रम दूर हो जाते हैं और वह रस्सी मात्र रह जाती है इसी प्रकार मैं जीव नहीं हूँ परन्तु शास्त्रोक्ति से शिव हूँ । २ । सत्य-ज्ञान और आनन्द (सच्चिदानन्द) रूप आत्मा में यह सारा असत्य विश्व मोह के कारण प्रतीत हो रहा है । निद्रा के मोह से यह सभी स्वप्नवत् है, वह सत्य नहीं है,

मत्तो नान्यत् किञ्चिदत्रास्ति विश्वं सत्यं बाह्यं वस्तु मायोपक्लृप्तम् ।
आदर्शान्तर्भासमानस्य तुल्यं मय्यद्वैते भाति तस्माच्छिवोऽहम् ॥४॥
नाऽहं जातो न प्रवृद्धो न नष्टो देहस्योक्ताः प्राकृताः सर्वधर्माः ।
कर्तृत्वादिश्चिन्मयस्यास्ति नाहङ्कारस्यैव ह्यात्मनो मे शिवोऽहम् ॥५॥
नाहं जातो जन्ममृत्यू कुतो मे नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।
नाहं चित्तं शोकमोहौ कुतो मे नाहं कर्ता बन्धमोक्षौ कुतो मे ॥६॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितमात्मपञ्चकस्तोत्रम् ॥५॥

६. चन्द्रशेखराष्टकस्तोत्रम्

चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर पाहि माम् । चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर चन्द्रशेखर रक्ष माम् ॥१॥ रत्नसानुशरासनं रजताद्रिश्रृङ्गनिकेतनं

मैं तो शुद्ध पूर्ण नित्यरूप एक शिव हूं । ३ । मुझ से भिन्न यहां पर विश्व नहीं है, यह सच है कि बाहरी सभी वस्तुएं माया से बनी हुई हैं। वह सब ऐसे ही प्रतीत हो रहे हैं जैसे कि आदर्श (आइने) के बीच में दिखाई दे रहे हों । वह सब मुझ अद्वैत में प्रतीत हो रहे हैं, अतः मैं शिव ही हूँ । ४ । न ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ न बढ़ा हुआ हूं और न ही नाश को प्राप्त होता हूँ । यह तो सभी प्राकृत धर्म देह के कहे गए हैं, यह कर्तृत्व भोक्तृत्व आदि तो चेतनामय के ही धर्म हैं अहङ्कार के नहीं तब आत्मा के कहां, अतः मैं शिव ही हूँ । ५ । मैं पैदा ही नहीं हुआ तो मेरे लिए जन्म और मृत्यु कहां ? जब मेरे प्राण ही नहीं तो मुझे भूख और प्यास कहां ? जब मैं चित्त रूप ही नहीं हूं तो मुझे शोक और मोह कहां से ? जब मैं कर्ता ही नहीं, तो मेरे लिए बन्ध और मोक्ष ही क्या । ६ ।

श्रीशङ्कराचार्यविरचित आत्मपञ्चकस्तोत्र पूर्ण । ५ ।

हे चन्द्रशेखर, हे चन्द्रशेखर, हे चन्द्रशेखर मेरा पालन करो हे चन्द्रशेखर, हे चन्द्रशेखर, हे चन्द्रशेखर मेरी रक्षा करो । १ । रत्नों के शिखरों से युक्त धनुष वाले, कैलास के शिखरों पर रहने वाले, गरुड़ की शिञ्जिनी

शिञ्जिनीकृतपन्नगेश्वरमच्युताननसायकम् । क्षिप्रदग्धपुरत्रयं त्रिदिवालयैरभिवन्दितं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥२॥ पञ्चपादपपुष्पगन्धपदाम्बुजद्वयशोभितं भाललोचनजातपावकदग्धमन्मथविग्रहम् । भस्मदिग्धकलेवरं भवनाशनं भवमव्ययं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥३॥ मत्तवारणमुख्यचर्मकृतोत्तरीयमनोहरं पङ्कजासनपद्मलोचनपूजिताङ्घ्रिसरोरुहम् । देवसिन्धुतरङ्गसीकरसिक्तशुभ्रजटाधरं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥४॥ यक्षराजसखं भगाक्षहरं भुजङ्गविभूषणं शैलराजसुतापरिष्कृतचारुवामकलेवरम् । क्ष्वेडनीलगलं परश्वधधारिणं मृगधारिणं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥५॥ कुण्डलीकृतकुण्डलेश्वरकुण्डलं वृषवाहनं नारदादिमुनीश्वरस्तुतिवैभवं भुवनेश्वरम् । अन्धकान्तकमाश्रितामर-

---

बनाए हुए तथा विष्णु के मुख को बाणों का रूप देने वाले, शीघ्रता से तीनों पुरों का दाह करने वाले, देवता लोगों से नमस्कृत चन्द्रशेखर का मैं आश्रय लेता हूँ, मेरा यम क्या बिगाड़ लेंगे । २ । पांच देववृक्षों के पुष्पों के गन्ध से सुशोभित दोनों चरणों वाले, माथे के नेत्र से उत्पन्न अग्नि से कामदेव का शरीर जलाने वाले, भस्म से लिपटे शरीर वाले, संसार का नाश करने वाले, अविकारी और भवरूप चन्द्रशेखर का मैं आश्रय लेता हूँ. मेरा यम क्या बिगाड़ लेंगे । ३ । मस्त दिग्गज के चर्म से मनोहर उत्तरीय किये हुए, ब्रह्मा तथा विष्णु से पूजित चरणकमलों से युक्त, देवनदी गङ्गा की तरङ्गों की बून्दों से सिंची हुई सफेद जटाओं को धारण किये हुए चन्द्रशेखर का मैं आश्रय लेता हूँ, मेरा यम क्या बिगाड़ लेंगे । ४ । कुबेर के प्रिय, इन्द्र को सहस्रभग से सहस्राक्ष बनाने वाले, सर्पों के भूषण वाले पर्वतराज की पुत्री से विभूषित सुन्दर शरीर वाले, विष से नीले गले वाले, परशु का शस्त्र और मृगचर्म धारण करने वाले चन्द्रशेखर का मैं आश्रय लेता हूं , मेरा यम क्या बिगाड़ लेंगे ।५। कुण्डलेश्वर (सर्प) के कुण्डलों से कुण्डल बनाये हुए, बैल की सवारी वाले, नारदादि

पादपं शमनान्तकं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥६॥ भेषजं भवरोगिणामखिलापदामपहारिणं दक्षयज्ञविनाशनं त्रिगुणात्मकं त्रिविलोचनम् । भुक्तिमुक्तिफलप्रदं सकलाघसङ्घनिवर्हणं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥७॥ भक्तवत्सलमर्चितं निधिमक्षयं हरिदम्बरं सर्वभूतपतिं परात्परमप्रमेयमनुत्तमम् । सोमवारिन-भू-हुताशन-सोमपाऽनिलखाकृतिं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वैयमः ॥ विश्वसृष्टिविधायिनं पुनरेव पालनतत्परं संहरन्तमपि प्रपञ्चमशेषलोकनिवासिनम् । क्रीडयन्तमहर्निशं गणनाथयूथसमन्वितं चन्द्रशेखरमाश्रये मम किं करिष्यति वै यमः ॥६॥ मृत्युभीतमृकण्डसूनुकृतस्तवं शिवसन्निधौ यत्र कुत्र च यः पठेन्नहि तस्य मृत्युभयं भवेत् । पूर्णमायुररोगिता-

---

मुनिराजों की स्तुति की सम्पदा वाले, भुवनेश्वर, अन्धकासुर को मारने वाले, कल्पवृक्ष का आश्रय लिये हुए, शमन का अन्त करने वाले चन्द्रशेखर का मैं आश्रय लेता हूं, मेरा यम क्या बिगाड़ लेंगे । ६ । संसार के रोगियों की औषधि, सारी आपत्तियों के दूर करने वाले, दक्ष के यज्ञ का ध्वंस करने वाले, त्रिगुणरूपी, तीनों आंखों वाले, भोग और मोक्ष का फल देने वाले, सारे पापों को दूर करने वाले चन्द्रशेखर का मैं आश्रय लेता हूं, मेरा यम क्या बिगाड़ लेंगे । ७ । भक्तवत्सल, पूजित, अक्षयनिधि, हरे वस्त्रों वाले, सभी भूतों के पति, पर से भी पर, अप्रमेय तथा अत्युत्तम, सोम, जल, सूर्य, भूमि, अग्नि, सोमरस पीने वाले, वायु और आकाश की आकृति वाले चन्द्रशेखर का मैं आश्रय लेता हूं, मेरा यम क्या कर लेंगे ।८। विश्व की सृष्टि करने वाले और पुनः पालन करने वाले, सारे प्रपंच का संहार करने वाले और सारे संसार में निवास करने वाले, दिन रात खेल कराते हुए, गणेश के दल से युक्त चन्द्रशेखर का मैं आश्रय लेता हूं, मेरा यम क्या बिगाड़ लेंगे ।६। मृत्यु से डरे हुए मार्कण्डेय ऋषि से स्तुति किए गए इस स्तोत्र को जो कोई जहां कहीं शिव जी के पास में पढ़े तो उसे मृत्यु का भय नहीं होता । पूरी आयु, अरोगता, सारी धन

मखिलार्थसंपदमादरं चन्द्रशेखर एव तस्य ददाति मुक्तिमयत्नतः ॥१०॥

इति श्री चन्द्रशेखराष्टक-स्तोत्रम् ॥६॥

७. शिवानामावल्यष्टकस्तोत्रम्

हे चन्द्रचूड मदनान्तक शूलपाणे स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शम्भो। भूतेश भीतभयसूदन मामनाथं संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥१॥ हे पार्वतीहृदयवल्लभ चन्द्रमौले भूताधिप प्रमथनाथ गिरीश-जाप। हे वामदेव भव रुद्र पिनाकपाणे। संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥२॥ हे नीलकण्ठ वृषभध्वज पञ्चवक्त्र लोकेश शेषवलय प्रमथेश शर्व। हे धूर्जटे पशुपते गिरिजापते मां संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष ॥३॥ हे विश्वनाथ शिव शङ्कर देवदेव गङ्गाधर प्रमथनायक नन्दि-केश। बाणेश्वरान्धकरिपो हरलोकनाथ संसारदुःखगहनाज्जगदीश

संपदा और आदर को चन्द्रशेखर ही उसे देता है और विना यत्न ही मोक्ष भी दे देता है ।१०।

श्री मार्कण्डेय लिखित चन्द्रशेखराष्टक पूर्ण ।६।

हे चन्द्रयुक्त मस्तक वाले, कामदेव को भस्म करने वाले, त्रिशूल को धारण करने वाले, स्थिररूप, पर्वतेश, पार्वतीश, महेश, शम्भु, भूतनाथ, डरों के डर को मिटाने वाले, जगदीश, मुझ अनाथ को इस संसार के घने दुःखों से बचाओ ।१। हे पार्वती के हृदय के प्यारे, हे चन्द्रमौलि, हे भूतनाथ, हे प्रमथनाथ, हे पर्वतराज से उपासित, हे वामदेव, हे भव, हे रुद्र, हे पिनाक-पाणि, हे जगदीश आप मुझे संसार के घने दुःखों से बचावें ।२। हे नील-कण्ठ. हे बैल की ध्वजा वाले, हे पांच मुखों वाले, हे लोकनाथ, हे शेष के कङ्कण वाले, हे प्रमथनाथ, हे शर्व, हे धूर्जटि, हे पशुपति, हे गिरिजापति, हे जगदीश आप हमारी संसार के घने दुःखों से रक्षा करें ।३। हे विश्वनाथ, हे शिव, हे शङ्कर, हे देवदेव, हे गङ्गाधर, हे प्रमथनायक, हे नन्दिकेश्वर, हे बाणेश्वर, हे अन्धकरिपु, हे हर, हे लोकनाथ, हे जगदीश, आप हमें संसार

रक्ष ।।४।। वाराणसीपुरपते मणिकर्णिकेश वीरेश दक्षमखकाल विभो-
गणेश । सर्वज्ञ सर्वहृदयैकनिवास नाथ संसारदुःखगहनाज्जगदीश रक्ष
।।५।। श्रीमन्महेश्वर कृपामय हे दयालो हे व्योमकेश शितिकण्ठ गणा-
धिनाथ । भस्माङ्गरागनृकपालकलापमाल संसारदुःखगहनाज्जगदीश
रक्ष ।।६ । कैलासशैलविनिवास वृषाकपे हे मृत्युञ्जय त्रिनयन त्रिजग-
न्निवास । नारायणप्रिय मदापह शक्तिनाथ संसारदुःखगहनाज्जदीश
रक्ष ।।७।। विश्वेश विश्वभवनाशितविश्वरूप विश्वात्मक त्रिभुवनैकगुणा-
भिवेश । हे विश्ववन्द्य करुणामय दीनबन्धो संसारदुःखगहनाज्जगदीश
रक्ष ।।८।। गौरीविलासभुवनाय महेश्वराय पञ्चाननाय शरणागतवत्सलाय।
सर्वाय सर्वजगतामधिपाय तस्मै दारिद्र्यदुःखदहनाय नमः शिवाय ।।९।।

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवनामावल्यष्टकम् ।।७।।

के घने दुःखों से बचावें । ४ । हे वाराणसी नगर के पति, हे मणिकर्णिक के ईश्वर, हे वीरेश, हे दक्षयज्ञ को ध्वंस करने वाले, हे विभु, हे गणेश, हे सर्वज्ञ, हे सभी के हृदयों में एकमात्र निवास करने वाले, हे नाथ, हे जगदीश आप संसार के घने दुःखों से हमारी रक्षा करें । ५ । हे श्रीमन्महेश्वर, हे कृपामय, हे दयालु, हे व्योमकेश, हे नीलकण्ठ, हे गणनायक, हे राख के अङ्गराग वाले, हे मनुष्यों के कपालों के समूह की माला वाले, हे जगदीश मेरी संसार के गहन दुःखों से रक्षा करें । ६ । हे कैलाश पर्वत पर रहने वाले, हे वृषाकपे, हे मृत्युञ्जय, हे तीन आंखों वाले, हे त्रिलोकी में रहने वाले । हे नारायण के प्रिय, हे मद को दूर करने वाले, हे शक्तिनाथ, हे जगदीश मुझे संसार के घने दुःखों से बचावें । ७ । हे विश्वेश, विश्व के भवन में विश्वरूप को व्याप्त करने वाले, विश्वात्मक, त्रिभुवन एकमात्र गुणों के निवासस्थान, हे विश्व भर के वन्दनीय, हे करुणामय, हे दीनबन्धु, हे जगदीश आप मुझे संसार के घने दुःखों से बचावें । ८ । पार्वती के विलास स्थान, महेश्वर, पांच मुखों वाले, शरणागतों के प्यारे, सर्वरूप, सारे संसार के स्वामी, दरिद्रता के दुःखों को

८. वेदसारशिवस्तोत्रम्

पशूनां पतिं पापनाशं परेशं गजेन्द्रस्य कृत्तिं वसानं वरेण्यम्। जटाजूटमध्ये स्फुरद्गाङ्गवारिं महादेवमेकं स्मरामि स्मरामि ॥१॥ महेशं सुरेशं सुरारातिनाशं विभुं विश्वनाथं विभूत्यङ्गभूषम् । विरूपाक्षमिन्द्वर्कवह्नित्रिनेत्रं सदानन्दमीडे प्रभुं पञ्चवक्त्रम् ॥२॥ गिरीशं गणेशं गले नीलवर्णं गवेन्द्राधिरूढं गुणातीतरूपम् । भवं भास्करं भस्मना भूषिताङ्गं भवानीकलत्रं भजे पञ्चवक्त्रम् ।३॥ शिवाकान्त शम्भो शशाङ्कार्धमौले महेशान शुलिन् जटाजूटधारिन् । त्वमेको जगद्व्यापको विश्वरूप प्रसीद प्रसीद प्रभो पूर्णरूप ॥४॥ परात्मानमेकं जगद्बीजमाद्यं निरीहं निराकारमोङ्कारवेद्यम् । यतो जायते पाल्यते येन विश्वं तमीशं

दूर करने वाले शिव जी को मेरा नमस्कार हो । ६ ।

श्रीशङ्कराचार्य विरचित शिवनामावल्यष्टक पूर्ण । ७ ।

पशुओं के पति, पापों का नाश करने वाले, परेश, गजराज के चर्म को धारण करने वाले, वरणीय, जटाजूट के बीच में बहते हुए गङ्गाजल वाले, एक महादेव जी को ही मैं स्मरण करता हूं । १ । महेश, सुरेश, देवशत्रुओं का नाश करने वाले, व्यापक, विश्वनाथ, भस्म को अङ्गों में रमाए हुए, विरूप आंखों वाले, चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि की तीन आंखों वाले, सदानन्द, पञ्चवक्त्र प्रभु की मैं पूजा करता हूं । २ । गिरीश, गणेश, गले में नीलरंग वाले, बड़े वृषराज की सवारी कर रहे, तीनों गुणों से अतीत रूप वाले, भव, प्रकाश करने वाले, भस्म से भूषित अङ्गों वाले, पार्वतीपति पञ्चमुख भगवान् का मैं भजन करता हूं । ३ । हे पार्वतीपते, हे शिव, हे चन्द्रमा के अर्ध को मौलि में धारण किए हुए, हे महेशान, हे त्रिशूलधारिन्, हे जटाजूट धारण करने वाले, हे विश्वरूप, हे पूर्णरूप प्रभु तुम्हीं एक सारे संसार के व्यापक हो, आप प्रसन्न हूजिए । ४ । परात्मा, एक, जगत् के बीज, आद्य, निरीह, निराकार, ओङ्कार से जानने योग्य, जिस से सारा संसार उत्पन्न होता है तथा

भजे लीयते यत्र विश्वम् ॥५॥ न भूमिर्न चापो न वह्निर्न वायुर् न चाकाशमास्ते न तन्द्रा न निद्रा । न ग्रीष्मो न शीतं न देशो न वेषो न यस्यास्ति मूर्तिस्त्रिमूर्तिं न तमीडे ॥६॥ अजं शाश्वतं कारणं कारणानां शिवं केवलं भासकं भासकानाम् । तुरीयं तमः पारमाद्यन्तहीनं प्रपद्ये परं पावनं द्वैतहीनम् ॥७॥ नमस्ते नमस्ते विभो विश्वमूर्ते नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते । नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य ॥८॥ प्रभो शूलपाणे विभो विश्वनाथ महादेव शम्भो महेश त्रिनेत्र । शिवाकान्त शम्भो स्मरारे पुरारे त्वदन्यो वरेण्यो न मान्यो न गण्यः ॥९॥ शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन् । काशीपते करुणया जगदेतदेकस् त्वं हंसि पासि

जिस से पालन किया जाता है, उस ईश का मैं भजन करता हूं जहां पर विश्व लीन हो जाता है । ५ । न भूमि, न जल, न अग्नि, न वायु, न आकाश रहता है, न आलस्य रहता है, न नींद रहती है, न गरमी, न सर्दी, न देश न वेश, जिसकी मूर्ति नहीं है, उस त्रिमूर्ति की मैं पूजा करता हूँ । ६ । जन्महीन, शाश्वत, कारणों के कारण, केवल शिव, प्रकाशकों के प्रकाशक, तुरीय, तमस् के पार, आदि और अन्त से हीन परम पवित्र करने वाले द्वैतहीन का मैं आश्रय लेता हूं । ७ । हे विभो, हे विश्वमूर्ते आप को बार-बार नमस्कार हो, हे चित्स्वरूप तथा आनन्दमूर्ते आप को बार-बार नमस्कार हो, हे तपस्या तथा योग से ज्ञान योग्य आप को बार-बार नमस्कार हो, हे वेदों तथा ज्ञान से जानने योग्य आप को बार-बार नमस्कार हो । ८ । हे प्रभो, हे शूलपाणे, हे विभो, हे विश्वनाथ, हे महादेव, हे शम्भो, हे महेश, हे त्रिनेत्र, हे पार्वतीवल्लभ, हे शान्ति की भूमि, हे कामदेव के शत्रु, हे पुरारि, तुझ से भिन्न कोई भी वरणीय गणना के योग्य या मान के योग्य नहीं है । ९ । हे शम्भो, हे महेश, हे करुणामय, हे त्रिशूलधारी, हे गौरीपते, हे पशुपते, हे पशुपाश को नाश करने वाले, हे काशीपते आप इस जगत् को करुणापूर्वक अकेले ही नष्ट

विद्धासि महेश्वरोऽसि ॥१०॥ त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ। त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश लिङ्गात्मके हर चराचर विश्वरूपिन् ॥११॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं वेदसारशिवस्तोत्रम्। ८॥

६. श्रीशिवलिङ्गाष्टकस्तोत्रम्

ब्रह्ममुरारिसुरार्चितलिङ्गं निर्मलभासितशोभितलिङ्गम्। जन्मजदुःखविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥१॥ देवमुनिप्रवरार्चितलिङ्गं कामदहं करुणाकरलिङ्गम्। रावणदर्पविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥२॥ सर्वसुगन्धिविलेपितलिङ्गं बुद्धिविवर्धनकारणलिङ्गम्। सिद्ध सुरासुरवन्दितलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ॥३॥ कनकमहामणिभूषितलिङ्गं फणिपति-वेष्टित-शोभितलिङ्गम्। दक्षसुयज्ञ-

---

करते हो, रक्षा करते हो, बनाते हो और इसके महेश्वर हो। १०। हे देव भव, कामदेव के शत्रु आप से ही संसार उत्पन्न होता है आप में ही स्थिर रहता है। हे मृड, विश्वनाथ, हे ईश, यह जगत् तुझ में ही लीन होता है। हे हर, चराचर, विश्वरूपिन् आप लिङ्ग रूप हो। ११।

श्री शङ्कराचार्यविरचित वेदसारशिवस्तोत्र पूर्ण। ८।

ब्रह्मा, विष्णु और देवताओं से पूजित लिङ्ग, निर्मल भस्म से शोभित लिङ्ग, जन्म भर के दुःखों को नाश करने वाला यह लिङ्ग है, अतः इस शिवलिङ्ग को नमस्कार करता हूं।१। देवताओं तथा मुनिश्रेष्ठों से सेवित लिङ्ग, काम को दहन करने वाला और करुणा करने वाला लिङ्ग, रावण के घमण्ड को चकनाचूर करने वाला लिङ्ग है, अतः इस शिवलिङ्ग को मैं प्रणाम करता हूं। २। सभी सुगन्धियों से लिपे हुए लिङ्ग को, बुद्धि को बढ़ाने वाले लिङ्ग को, सिद्ध देवता तथा असुरों से वन्दित लिङ्ग को, मैं सदा इस शिवलिङ्ग को नमस्कार करता हूं। ३। सोने और महामणियों से भूषित लिङ्ग को, सूर्य से वेष्टित और शोभित लिङ्ग को, दक्ष के यज्ञ का ध्वंस करने वाले लिङ्ग को,

विनाशकलिङ्गं तत्प्रणमामिसदाशिवलिङ्गम् ।।४।। कुङ्कुमचन्दनलेपितलिङ्गं पङ्कजहारसुशोभितलिङ्गम् । सञ्चितपापविनाशनलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।५।। देवगणार्चितसेवितलिङ्गं भावैर्भक्तिभिरेव च लिङ्गम् । दिनकरकोटिप्रभाकरलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।६।। अष्टदलोपरि वेष्टितलिङ्गं सर्वसमुद्भवकारणलिङ्गम् । अष्टदरिद्रविनाशित लिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।। सुरगुरु-सुरवर-पूजितलिङ्गं सुरवनपुष्पसदाऽर्चितलिङ्गम् । परात्परं परमात्मकलिङ्गं तत्प्रणमामि सदाशिवलिङ्गम् ।।८।।

इति श्री शिवलिङ्गाष्टकस्तोत्रम् ।।९।।

१०. श्रीपशुपत्यष्टकस्तोत्रम्

पशुपतिं द्युपतिं धरणीपति भुजगलोकपतिं च सतीपतिम् । प्रणत भक्तजनार्तिहरं परं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ।।१।। न जनको

मैं शिवलिङ्ग को सदा नमस्कार करता हूं ।४। कुङ्कुम और चन्दन से लिपे हुए लिङ्ग को, कमलों के हार से शोभित लिङ्ग को, सत्स्वरूप, चित्स्वरूप तथा पापों का नाश करने वाले लिङ्ग को, मैं सदा शिव लिङ्ग को नमस्कार करता हूँ ।५। देवगणों से अर्चित और सेवित लिङ्ग को जो लिङ्ग कि भाव और भक्ति से सुपूजित है, करोड़ों सूर्यों का प्रकाश करने वाले लिङ्ग को, सदा (श्री अमरनाथ जी के) लिङ्ग को मैं नमस्कार करता हूं । ६ । अष्टदल के ऊपर रखे हुए लिङ्ग को, सभी की उत्पत्ति के कारण लिङ्ग को, आठ प्रकार के दरिद्रों को दूर करने वाले लिङ्ग को, मैं सदा श्री शिवलिङ्ग को नमस्कार करता हूं । ७ । बृहस्पति तथा देवश्रेष्ठों से पूजित लिङ्ग को, नन्दनवन के पुष्पों से सदा अर्चित लिङ्ग को, पर से पर तथा परमात्मरूपी लिङ्ग को, मैं सदा शिवलिङ्ग को प्रणाम करता हूँ । ८ ।

श्री शिवलिङ्गाष्टकस्तोत्र पूर्ण । ९ ।

हे मनुष्यो, पशुओं के पति द्युलोक के पति, पृथ्वी के पति, सूर्यलोक के पति और सती के पति, भक्तजनों के कष्टों को दूर करने वाले को प्रणाम करो

जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरिबलं कुलम् । अवति कोऽपि न कालवशं गतं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥२॥ मुरजडिण्डिमवाद्यविलक्षणं मधुरपञ्चमनादविशारदम् । प्रमथभूतगणैरपि सेवितं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥३॥ शरणदं सुखदं शरणान्वितं शिव शिवेति शिवेति नतं नृणाम् । अभयदं करुणावरुणालयं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥४॥ नरशिरोरचितं मणिकुण्डलं भुजगहारमुदं वृषभध्वजम् । चितिगजोधवलीकृतविग्रहं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥५॥ मखविनाशकरं शशिशेखरं सततमध्वरभाजि फलप्रदम् । प्रलयदग्धसुरासुरमानवं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥६॥ मदमपास्य चिरं हृदि संस्थितं मरणजन्मजराभयपीडितम् । जगदुदीक्ष्य समीपभयाकुल

और गिरिजा के पति का भजन करो । १ । न पिता न माता न सहोदर भाई, न बहिन, न बेटा, न ही बहुत बल और कुल उसे बचा सकता है जो, कि काल के वश में है, अतः हे मनुष्यो गिरिजा के पति का भजन करो । २ । ढोल और डिण्डिम के बजाने में विलक्षण, मधुरपञ्चमस्वर के नाद में विशारद, प्रमथगण और भूतगण से भी सेवा किये गये गिरिजा के पति का हे मनुष्यो भजन करो । ३ । शरण देने वाले, सुख देने वाले, शरण से युक्त, मनुष्यों द्वारा शिव शिव शिव करके नमस्कार किए गए, अभय को देने वाले, करुणा के सागर गिरिजा के पति का हे मनुष्यो भजन करो । ४ । नरकपालों से बनाए हुए मणिकुण्डों वाले, सांपों के हार से मोद मनाने वाले वृषभ की ध्वजा वाले, चिता की धूलि से सफेद शरीर किए हुए गिरिजापति का हे मनुष्यो भजन करो । ५ । यक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाले, चन्द्रमा को मस्तक में धारण किए हुए, निरन्तर यज्ञों का फल देने वाले, प्रलय में सुर असुर और मनुष्यों को जलाने वाले गिरिजापति का हे मनुष्यो भजन करो । ६ । मद को छोड़ कर, मरण जन्म और बुढ़ापे के भय से पीड़ित संसार को देख कर जो कि समीप के भय से आकुल है हृदय में स्थित उस गिरिजापति को हे मनुष्यो भजन

भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥७॥ हरिविरिञ्चिसुराधिपपूजितं यमदिनेशधनेशनमस्कृतम् । त्रिनयनं भुवनत्रितयाधिपं भजत रे मनुजा गिरिजापतिम् ॥८॥

इति श्रीपृथिवीपतिसूरिविरचितं पशुपत्यष्टकस्तोत्रम् ॥१०॥

११. शिवस्तुतिः

स्फुटं स्फटिकसप्रभं स्फुटितहाटकश्रीजटं शशाङ्कदलशेखरं कपिलफुल्लनेत्रत्रयम् । तरक्षुवरकृत्तिमद्भुजगभूषणं भूतिमत् कदा नु शितिकण्ठ ते वपुरवेक्षते वीक्षणम् ॥१॥ त्रिलोचन विलोचने लसति ते ललामायिते स्मरो नियमघस्मरो नियमिनामभूद् भस्मसात् स्वभक्तिलतया वशीकृतवती सतीयं सती स्वभक्तवशतो भवानपि वशी प्रसीद प्रभो ।२। महेश महितोऽसि तत्पुरुष पूरुषाग्र्यो भवान् अघोर रिपुघोर तेऽनवम वाम-

---

करो । ७ । विष्णु ब्रह्मा और इन्द्र से पूजित, यम सूर्य और कुबेर से नमस्कृत तीन आंखों वाले तीनों भुवनों के स्वामी गिरिजापति का हे मनुष्यो भजन करो । ८ ।

श्री पृथिवीपतिसूरिविरचित पशुपत्यष्टकस्तोत्र पूर्ण । १० ।

स्फटिक के समान स्पष्ट प्रभा वाले, चमकते सोने की शोभा जैसी जटा वाले, चन्द्रदल को माथे में लगाए हुए सफेद खुली हुई तीन आंखों वाले, ऊंचे तरख के चमड़े की खाल वाले, सांपों के गहनों वाले, हे शिव आपके भस्म तथा ऐश्वर्य वाले दर्शन हमारी आंखें कब देख पावेंगी ।१। हे तीन आंखों वाले, आपकी माथे की आंख के चमकते ही, नियम वालों के नियमों को खा जाने वाला कामदेव भस्म की ढेर ही हो गया । इस सती ने अपनी भक्ति की लता से आप को अपने वश में कर लिया, अपने भक्तों के वश से आप भी वश में आ जाते हो, हे प्रभो आप प्रसन्न हों । २ । हे महेश आप महिमा वाले हैं, हे तत्पुरुष आप पुरुषश्रेष्ठ हैं, हे अघोर आप शत्रुओं के लिए घोर हैं, हे सर्वश्रेष्ठ वामदेव यह आप को अञ्जलि है, हे सद्योजात आप को नमस्कार हो,

देवाञ्जलिः । नमः सपदि जात ते त्वमिति पञ्चरूपोऽञ्चितः प्रपञ्चचय-पञ्चवृन्मम मनस्तमस्ताडय ॥३॥ रसाघन रसाऽनलाऽनिल-वियद्-विव-स्वद्-विधुप्रयष्टृषु निविष्टमित्यज भजामि मूर्त्यष्टकम् । प्रशान्तमुत भीषणं भुवनमोहनं चेत्यहो वपूंषि गुणभूषितेऽहमहमात्मनोऽहंभिदे ॥४॥ विमुक्तिपरमाध्वनां तव षडध्वनामास्पदं पदं निगमवेदिनो जगति वामदेवादयः। कथञ्चिदुपशिक्षिता भगवतैव संविद्रते वयं तु विरलान्त-राः कथमुमेश तन्मन्महे ॥५॥ कठोरितकुठारया ललितशूलया बाहुया रणड्डमरया स्फुरद्धरिणया सखट्वाङ्गया । चलाभिरचलाभिरप्यगणि-ताभिरुन्नृत्यतश् चतुर्दशजगन्ति ते जयजयेत्ययुर्विस्मयम् ॥६॥ पुरा त्रिपुररन्धनं विविधदैत्यविध्वंसनं पराक्रमपरम्परा अपि परा न ते विस्मयः। अमर्षिबलहर्षितक्षुभितवृत्तनेत्रोज्ज्वलज्ज्वलज्ज्वलनहेलया शलभितं

आप पांच रूपों से युक्त हैं, सारे प्रपञ्च के समूह को आप वरण करते हैं, आप मेरे मन के अन्धकार को दूर करें । ३ । हे रसाघन आप की आठ मूर्तियां पृथ्वी, मेघ, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र और प्रयष्टा अग्नि में निविष्ट हैं, यह शान्त भी हैं, भयङ्कर भी हैं, संसार को मोहन करने वाली भी हैं, अतः यह आपके शरीर में आश्चर्यकर हैं, मैं आत्मा के अहङ्कार को दूर करने के लिए गुण से भूषित करता हूं । विमुक्ति के मार्ग वालों तथा छः शास्त्रों के मार्ग वालों के लिए भी आप का पद प्राप्य है, वामदेवादि भी तो वेदवित् होने पर भी संसार में किसी प्रकार आपके द्वारा ही ज्ञान पाते हैं, हे उमेश हम तो विरल अन्तर वाले हैं, उसे कैसे पा सकते हैं ? । ५ । कठोर किए हुए कुल्हाड़े वाली, सुन्दर त्रिशूल वाली, बजते हुए डमरु वाली, फरकते हुए हिरण वाली तथा चक्र वाली, आप के बाहुओं से—जो कि चलायमान भी हैं और स्थिर भी हैं—आप के नाचते हुए चौदहों जगत् जय जय करते हुए विस्मय में पड़ गए । ६ । पहले त्रिपुरासुर का मारना, कई प्रकार के दैत्यों का नाश करना आदि आप के पराक्रम की परम्पराएं हैं जिन में कोई विस्मय नहीं है, क्रोध वाले और बल

हि लोकत्रयम् ।।७।। सहस्रनयनो गुहः सहसहस्ररश्मिर्विधुर् बृहस्पतिरुता-प्पतिः ससुरसिद्धविद्याधराः । भवत्पदपरायणाः श्रियमिमां ययुः प्रार्थितां भवान् सुरतरुर्भृशं शिव शिवां शिवावल्लभ ।।८।। तव प्रियतमादतिप्रियतमं सदैवान्तरं पयस्युपहितं घृतं स्वयमिव श्रियो वल्लभम् । विबुध्य लघुबुद्धयः स्वपरपक्षलक्ष्यायितं पठन्ति हि लुठन्ति ते शठहृदः शुचा शुण्ठिताः ।।९।। निवासनिलयाचिता तव शिरस्ततिर्मोलिका कपालमपि ते करे त्वमशिवोऽस्यनन्तर्धियाम् । तथाऽपि भवतः पदं शिवशिवेत्यदो जल्पताम् । अकिञ्चन न किञ्चन वृजिनमस्ति भस्मीभवेत् ।।१०।। त्वमेव किल कामधुक् सकलकाममापूरयन् सदा त्रिनयनो भवान् वहसि चार्चि नेत्रोद्भवम् । विषं विषधरान् दधत् पिबसि तेन

से हर्षित तथा क्षुभित आप की गोल आंखों से उज्ज्वल जलती हुई आग की शीघ्रता से तीनों लोक शलभ बन गए । ७ । इन्द्र, स्कन्द, सूर्य सहित चन्द्रमा, बृहस्पति, वरुण, देवताओं समेत सिद्ध और विद्याधर आप की सेवा में लगे हुए प्रार्थित इस लक्ष्मी को प्राप्त कर गए, आप तो कल्पवृक्ष हैं और शिवा-वल्लभ होने के नाते हमारे लिए उसी लक्ष्मी से पुनः पुनः शिवकर बनो । ८ । तुम्हारा हृदय सदैव प्रियतम से भी अतिप्रियतम है, दूध में रखा हुआ घी तो स्वयं ही लक्ष्मी का प्रिय होता है । छोटी बुद्धि वाले लोग अपने और पराए पक्षों के लक्ष्यों को सामने रख कर पढ़ते हैं और वह शठहृदय वाले शोक से शुण्ठित हो कर लुढकते हैं । ९ । आप की कपालमाला निवासस्थान के योग्य है, आप के हाथ में कपाल भी है आप बहिर्बुद्धि वालों के लिए अशिव हैं। तो भी आप का पद शिव शिव कहने वालों के लिए है । हे अकिञ्चन, उनके लिए दरिद्र (पाप) नहीं है, वह भस्म हो जाता है । १० । सभी कामनाओं को पूर्ण करते हुए आप ही कामधुक् हैं, आप सदा ही तीन आंखों वाले हैं और आंखों से उत्पन्न होने वाली किरण को धारण करते हैं । सांपों को धारण करते हुए विष पीते हो तो भी आप आनन्दयुक्त हो, हे जगत् के स्वामी आप

चानन्दवान् विरुद्धचरितोचिता जगदधीश ते भिक्षुता ॥११॥ नमः शिव शिवशिवाशिवशिवार्थ कृन्ताशिवं नमो हर हराहराहरहरान्तरा मे दृशम्। नमो भव भवाभवप्रभवभूतये मे भवान् नमो मृड नमो नमो नम उमेश तुभ्यं नमः ॥१२॥ सतां श्रवणपद्धतिं सरतु सन्नतोक्तेत्यसौ शिवस्य करुणाङ्कुरात्प्रतिकृतात् सदा सोचिता। इति प्रथितमानसो व्यधितनाम नारायणः शिवस्तुतिमिमां शिवां लिकुचिसूरिसूनुः सुधीः ॥१३॥

इति श्रीलिकुचिसूरिसूनुनारायणपण्डिताचार्यविरचिता शिवस्तुतिः ॥११॥

१२. शिवमानसपूजा स्तोत्रम्

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम्। जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च

का भिक्षु होना भी विरुद्ध चरित्र के उचित ही है। ११। हे शिव शिव शिव आप को नमस्कार है आप हमारे शिव के लिए अशिव को दूर कर दें। हे हर हर हर आप दिन रात मेरी दृष्टि में रहें। हे भव भव भव आप को नमस्कार हो, आप मेरे पुनः संसार में जन्म न लेने के लिए हों। हे मृड आप को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो हे उमेश आप को नमस्कार हो। १२। यह स्तुति सत्पुरुषों योग्य कही गई है, अतः सत्पुरुषों के श्रवणगोचर हो जो शिव जी के ही प्रतिबिम्बित करुणाङ्कर से उत्पन्न हुई है और उचित भी है। इस प्रकार प्रसिद्ध मन वाले लिकुचिसूरि के पुत्र नारायण ने इस स्तुति को बनाया है। १३।

श्री लिकुचिसूरिसूनु नारायणपण्डिताचार्य विरचित शिवस्तुति पूर्ण।११।

रत्नों से बनाए हुए आसन को, हिमजलों के स्नान को, दिव्य वस्त्रों को, कई रत्नों से भूषित कस्तूरी के गन्ध से सुगन्धित चन्दन को, जाती, चम्बा, बिल्वपत्र से मिश्रित पुष्पों को तथा धूप दीप को हे दयानिधे देव,

धूपं तथा दीपं, देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥१॥ सौवर्णे मणिखण्डरत्नरचिते पात्रे घृतं पायसं भक्ष्यं पञ्चविधं पयोदधियुतं रम्भाफलं पायसम्। शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या, प्रभो स्वीकुरु ॥२॥ छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकलागीतं च नृत्यं तथा। साष्टाङ्गं प्रणतीः स्तुतीर्बहुविधा एतत्समस्तं मया संकल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ॥३॥ आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः। संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥४॥ करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽप-

---

पशुपते आप हृदय से कल्पित ही ग्रहण करें। १। सोने के मणि के खण्डों तथा रत्न से बने हुए पात्र में घी तथा खीर को और दूध दही से युक्त पांच प्रकार के भक्ष्य को, केले तथा खीर को, हज़ार सब्ज़ियों को, रुचिकर जल को, उज्ज्वल कपूर के खण्ड को तथा ताम्बूल को, जिसे कि मैंने भक्ति से बनाया है, हे प्रभु आप स्वीकार करें। २। छत्र, चंवरों का जोड़ा, पंखा और निर्मल आइना, वीणा, ढोल, मृदङ्ग, काहल, कलागीत तथा नृत्य, साष्टाङ्ग प्रणाम, बहुत प्रकार की स्तुतियां, यह सब मैं ने आप की सेवा में संकल्प से समर्पित की हैं, हे प्रभो, आप कृपा कर पूजा ग्रहण करें। ३। आप मेरे आत्मा हैं, पार्वती मेरी बुद्धि है, प्राण मेरा साथी है, शरीर मेरा घर है, विषय-भोगों की रचना आप की पूजा है, नींद की स्थिति ही मेरी समाधि है, मेरे पैरों का चलना ही प्रदक्षिणा है, सब प्रकार की बातें ही स्तोत्र हैं। हे शिव जी, जो जो भी कर्म मैं करता हूं, वह वह सभी आपका आराधना मात्र ही तो है। ४। मेरे हाथों और पैरों से किये हुए, वाणी और शरीर से किये हुए, कर्मों से किये हुए, कानों और आंखों से किये हुए या

राधम् । विहितमविहितं वा सर्वमेतत् क्षमस्व जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥५॥ इति श्री शिवमानसपूजास्तोत्रम् ॥१२॥

१३. उपमन्युकृतशिवस्तोत्रम्

जय शङ्कर पार्वतीपते मृड शम्भो शशिखण्डशिखण्डमण्डन। मदनान्तक भक्तवत्सल प्रियकैलास दयासुधाम्बुधे ॥१॥ सदुपायकथास्वपण्डितो हृदये दुःखशरेण खण्डितः। शशिखण्डशिखण्डमण्डनं शरणं यामि शरण्यमीश्वरम् ॥२॥ महतः परितः प्रसर्पतस्तमसो दर्शनभेदिनो भिदे। दिननाथ इव स्वतेजसा हृदयव्योम्नि मनागुदेहि नः ॥३॥ न वयं तव चर्मचक्षुषा पदवीमप्युपवीक्षितुं क्षमाः। कृपयाऽभयदेन चक्षुषा सकलेनेश विलोकयाशु नः ॥४॥ त्वदनुस्मृतिरेव पावनी स्तुतियुक्ता नहि वक्तुमीश सा। मधुरं हि पयः स्वभावतो ननु कीदृक् सितश-

---

मन से किये हुए अपराध को चाहे वह विहित हों या अविहित उस सब को आप क्षमा करो, हे करुणा सागर शिवमहादेव शम्भो आप की सदा जय हो ।५। शिव मानसपूजास्तोत्र पूर्ण। १२।

हे शङ्कर, हे पार्वती के पति, हे रक्षक, हे शम्भो, हे चन्द्रकला से मस्तक को भूषित करने वाले, हे कामदेव को भस्म करने वाले, हे भक्तवत्सल, हे कैलास के प्यारे, हे दयारूपी अमृत के सागर, आप की जय हो ।१। मैं अच्छे उपायों की कथा में मूर्ख हूँ, हृदय में दुःख के बाण से पीडित हूँ, अतः शरण के योग्य चन्द्रखण्ड के शिखर से भूषित ईश्वर की शरण में जाता हूँ ।२। चारों ओर फैल रहे, आंखों को फाड़ने वाले बड़े अन्धकार का भेदन करने के लिए हे भगवन् आप हमारे हृदयाकाश में अपने तेज से सूर्य की भांति जरा उदय तो हो जावें ।३। हम अपनी चमड़े की आंखों से आप की पदवी को भी देखने में समर्थ नहीं हैं, हे ईश आप कृपा करके अपनी अभय देने वाली पूरी आंख से शीघ्र ही ज़रा देख तो लो हमें ।४। हे ईश आप का केवल स्मरण ही तो पवित्र कर देता है, फिर यदि उस में स्तुति भी मिली हो तो क्या कहें ? जैसे दूध

करायुतम् ॥५॥ सविषोऽप्यमृतायते भवान् शवमुण्डाभरणोऽपि पावनः। भव एव भवान्तकः सतां समदृष्टिर्विषमेक्षणोऽपि सन् ॥६॥ अपि शूलधरो निरामयो दृढवैराग्यरतोऽपि रागवान्। अपि भैक्ष्यचरो महेश्वरश्चरितं चित्रमिदं हि ते प्रभो ॥७॥ वितरत्यभिवाञ्छितं दृशा परिदृष्टः किल कल्पपादपः। हृदये भृत एव धीमतो नमतोऽभीष्टफल-प्रदो भवान् ॥८॥ सहसैव भुजङ्गपाशवान् विनिगृह्णाति न यावदन्तकः। अभयं कुरु तावदाशु मे गतजीवस्य पुनः किमौषधैः ॥९॥ सविषैरिव भीमपन्नगैर्विषयैरेभिरलं परिक्षतम्। अमृतैरिव संभ्रमेण मामभिषिञ्चाशु दयाऽवलोकनैः ॥१०॥ मुनयो बहवोऽद्य धन्यतां गमिताः स्वाभिमतार्थदर्शिनः। करुणाकर येन तेन मामवसन्नं ननु पश्य चक्षुषा

तो स्वभाव से ही मधुर होता है, यदि उस में सफेद शक्कर मिली हो तो क्या कहना। ५। विषधारण करके भी आप अमृत का आचरण करते हो, मुर्दों के मुण्डों के आभरण पहन कर भी आप पवित्र करने वाले हो, आप भव हो परन्तु सत्पुरुषों को भव के बन्धन से छुड़ाते हो, तीन आंखों वाले होकर भी आप सम (even) आंखों वाले हो। ६। शूल (एक प्रकार का रोग तथा त्रिशूल) धारण करके भी आप नीरोग हैं, दृढ़ वैराग्य में रत हो कर भी आप राग वाले हैं, भिक्षा मांगते हुए भी आप महेश्वर हैं, आप का यह चरित्र विलक्षण ही है। ७। कल्पवृक्ष को यदि आंख से देखें तो वह अभीष्ट फल का प्रदान करता है परन्तु आप को यदि कोई बुद्धिमान् हृदय में धारण कर लेता है तो नमस्कार करते ही आप फल दे देते हैं। ८। जब तक कि सांप का पाश लिए हुए यमराज ग्रहण कर ले (आप कृपा कर उस से पहले ही) हमें अभय कर दो, गतजीव पुरुष को औषधियां देने से क्या प्रयोजन है ?। ९। विषैले भयावह सांपों की भान्ति इन विषयों से पूर्णतः परिक्षत मुझे अमृत की भांति दयापूर्ण दृष्टि से आदरपूर्वक शीघ्र अभिषिक्त करो। १०। अपने अभिमत पदार्थ को देखने वाले बहुत से मुनि आप ने जिस कृपादृष्टि से धन्य कर

॥११॥ प्रणमाम्यथ यामि चापरं शरणं कं कृपणाभयप्रदम् । विरहीव विभो प्रियामयं परिपश्यामि भवन्मयं जगत ॥१२॥ बहवो भवताऽनुकम्पिताः किमितीशान न माऽनुकम्पसे । दधता किमु मन्दराचलं परमाणुः कमठेन दुर्धरः ॥१३॥ अशुचिं यदि माऽनुमन्यसे किमिदं मूर्ध्नि कपालदाम ते । उत शाठ्यमसाधुसङ्गिनं विषलक्ष्मासि न किं द्विजिह्वधृक् ॥१४॥ क दृशं विदधामि किं करोम्यनुतिष्ठामि कथं भयाकुलः । क नु तिष्ठसि रक्ष रक्ष मामयि शम्भो शरणागतोऽस्मि ते ॥१५॥ विलुठाम्यवनौ किमाकुलः किमुरो हन्मि शिरश्छिनद्मि वा । किमु रोदिमि रारटीमि किं कृपणं मां न यदीक्षसे प्रभो ॥१६॥ शिव सर्वग शर्व शर्मद प्रणतो देव दयां कुरुष्व मे । नम ईश्वर नाथ दिक्पते पुनरेवेश

दिये हैं, हे करुणाकर मुझ दीन को भी आज आप उसी आंख से देखें ।११। दीनों को अभय देने वाले दूसरे किस को मैं प्रणाम करूं अथवा शरण में जाऊं, हे विभो, जैसे विरही मनुष्य सारे संसार को अपनी प्रियतमामय देखता है, ठीक उसी भांति मैं भी आप से पूर्ण संसार को देखता हूँ ।१२। हे ईशान, आप ने बहुत लोगों पर दया की, आप मुझ पर क्यों दया नहीं करते, मन्दराचल को उठाने वाले कच्छप के लिये क्या परमाणु को उठाना बड़ा कठिन है ।१३। यदि आप मुझे अपवित्र मानते हो तो कृपा कर अपने माथे की इस मुण्डमाला को तो देखो, यदि मुझे शठ या असाधु संगति वाला मानते हो तो क्या आप ने विष का चिह्न नहीं धारण किया या आप सांपों को नहीं धारण करते हो ?।१४। मैं अपनी नज़र कहां लगाऊं ? भयभीत होकर क्या करूं ? किधर जाऊं ? आप कहां रहते हैं, हे शम्भो मेरी रक्षा करो मैं आप के शरणागत हूँ ।१५। क्या मैं व्याकुल होकर पृथ्वी पर लोटूं ? क्या मैं छाती पीटूं ? या सिर काट लूं ? क्या मैं रोऊं ? क्या मैं चिल्लाऊं ? हे प्रभो आप मुझ कृपण को क्यों नहीं देखते हैं ? ।१६। हे शिव, हे सर्वव्यापक, हे कल्याण देने वाले, हे देव मैं प्रणाम कर रहा हूँ, आप दया करें । हे ईश्वर, हे नाथ, हे-

नमो नमोस्तु ते ॥१७॥ शरणं तरुणेन्दुशेखरः शरणं मे गिरिराजकन्यका । शरणं पुनरेव तावुभौ शरणं नान्यदुपैमि दैवतम् ॥१८॥ उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं जपतः शम्भुसमीपवर्तिनः । अभिवाञ्छितभाग्यसंपदः परमायुः प्रददाति शङ्करः ॥१९॥ उपमन्युकृतं स्तवोत्तमं प्रजपेद् यस्तु शिवस्य सन्निधौ । शिवलोकमवाप्य सोऽचिरात् सह तेनैव शिवेन मोदते ॥२०॥ इत्युपमन्युकृतं शिवस्तोत्रम् ॥१३॥

१४. रावणकृतं शिवताण्डवस्तोत्रम्

जटा-कटाह-संभ्रम-भ्रमन्निलिम्पनिर्झरी विलोलवीचिवल्लरी विराजमानमूर्धनि । धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥१॥ धराधरेन्द्रनन्दिनी विलासबन्धुबन्धुर स्फुरद् दृगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे । कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि क-

---

दिशापते, आप को नमस्कार हो । हे ईश आप को बार-बार नमस्कार हो । । १७ । नवीन चन्द्रमा के शिखर वाले आपकी मैं शरण हूं, मैं पार्वती जी की शरण में हूं, पुनः वह दोनों मेरे लिए शरण हैं, मैं किसी अन्य देवता की शरण में नहीं जाता । १८ । उपमन्यु के बनाये हुए इस उत्तम स्तोत्र को शिव जी के पास जाकर जो जप करता है उसको शिव जी मनोवाञ्छित सिद्धियां संपदाएं और परम आयु देते हैं । १९ । उपमन्यु के बनाए हुए इस उत्तम स्तोत्र को जो शिव जी की समीपता में जप करता है वह शीघ्र ही शिवलोक को प्राप्त करके उसी के साथ प्रसन्न होता है । २० ।

उपमन्युकृत शिवस्तोत्र पूर्ण ।

जटासमूह के संभ्रम में घूम रही मन्दाकिनी (गङ्गा) नदी की चञ्चल लहरों की वेलि से सुशोभित सिर वाले, धग धग करके जलती हुई आग से युक्त मस्तक वाले, छोटे चन्द्रमा को मस्तक में धारण किए हुए शिव जी की ओर मेरा ध्यान प्रतिक्षण रहे । १ । पर्वतराज-नन्दिनी के विलास के बन्धु और स्थिर हो कर चमक रही आंखों की कोरों की परम्परा से प्रसन्न हो रहे मन वाले, कृपा-

चिच्चिदम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि ॥२॥ जटाभुजङ्गपिङ्गलस्फुरत्फणा-
मणिप्रभा कदम्बकुङ्कमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे । मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्त-
रीयमेदुरे मनो विनोदमद्भुतं विभर्तु भूतभर्तरि ॥३॥ सहस्रलोचनप्रभृ-
त्यशेषलेखशेखरप्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः । भुजङ्गराजमा-
लया निबद्धजाटजूटकः श्रियै चिराय जायता चकोरबन्धुशेखरः ॥४॥
ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभानिपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पना-
यकम् । सुधामयूखलेखया विराजमानशेखर महः कपालिसंपदे शिरो
जटालमस्तु नः ॥५॥ करालभालपट्टिका धगद्धगद्धगज्ज्वलद् धनञ्जया-
धरीकृतप्रचण्डपञ्चसायके । धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रक-प्रकल्प-
नैकशिल्पिनि त्रिलोचने मतिमम ॥६॥ नवीनमेघमण्डलीनिरुद्धदुर्धर-

कटाक्षों की धोरणी से बड़ी बड़ी आपत्तियों को रोकने वाले चिदम्बर भगवान् शिव रूपी वस्तु में रह कर मेरा मन विनोद को प्राप्त होवे । २ । जटाओं के सांपों की पिङ्गलता से चमकती फणों की मणियों की प्रभा और कदम्ब तथा कुंकुम के द्रव से लिपे हुए दिग्वधूमुख वाले, मद से अन्धे हाथियों की चमकती त्वचा के उत्तरीय से कोमल, भगवान् भूतभर्ता में मेरा मन अद्भुत विनोद को प्राप्त हो । ३ । इन्द्र प्रभृति सब के मुकुटों के लेख से पुष्पों की धूलि की धोरणी से धूसर हुए पादपीठ की भूमि वाले, भुजङ्गराज की माला से बन्धे हुए जटाजूट वाले चन्द्रशेखर हमारे लिए बहुत समय पर्यन्त कल्याण-कारी हों । ४ । माथे के चबूतरे पर जलती अग्नि की चिनगारियों की आभा से कामदेव को भी (भस्म कर) जाने वाले, देवराज से प्रणाम किए जा रहे, चांदनी की किरणों की रेखा से सुशोभित शिखर वाले कपालयुक्त ऐश्वर्य वाले के लिए हमारा सिर जटायुक्त होवे । ५ । भयङ्कर माथे की पट्टी पर धग धग कर के जलती हुई आग से प्रचण्ड कामदेव को नीचा दिखाने वाले, पार्वती के स्तनों के अगले चित्र-पत्रों की कल्पना में एकमात्र शिल्पी (कलाकार) तीन आंखों वाले (महादेव) में मेरी बुद्धि हो । ६ । नवीन मेघमण्डली से रोके हुए

स्फुरत् कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबन्धकन्धरम्। स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥८॥ अगर्वसर्वमङ्गलाकलाकदम्बमञ्जरीरसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम्। स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ॥९॥ जयत्वदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजङ्गमस्फुरद् धगद्धगद्धिनिर्गमत् करालभालहव्यवाट्। धिमद्धिमिद्धिमि-ध्वनन् मृदङ्गतुङ्गमङ्गलध्वनिक्रमप्रवर्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः ॥१०॥ दृषद्-विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजोर् गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः। तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजा-महीमहेन्द्रयोः समं प्रवर्तयन् मनः कदा सदा-

दुर्धर अमावस्या की अंधेरी रात के चमकते हुए अन्धकार समूह से युक्त गर्दन वाले, मन्द (मन्दाकिनी) नदी को धारण करने वाले, गजचर्म से सिन्धुर, चन्द्रमा से सुन्दर, जगत् की धुरा को धारण करने वाले शिव हमारे लिए लक्ष्मी प्रदान करें। ७। खिले हुए नील कमलों के प्रपञ्च से, काली छटा से, कण्ठ की सुन्दर ग्रीवा से, सुन्दर समूह वाली पृथ्वी को धारण किए हुए, कामदेव को भस्म करने वाले, पुरों को छेदन करने वाले, संसार को छेदन करने वाले, दक्षयज्ञ का ध्वंस करने वाले, गज का ध्वंस तथा अन्धक का नाश करने वाले यमभीति को दूर करने वाले उस का मैं भजन करता हूँ। ८। गर्वहीन सर्वमङ्गला की कलाओं के समूह की मञ्जरियों के रस प्रवाह की मधुरिमा को चूसने में भ्रमर की भांति व्रती, कामदेव-त्रिपुरासुर-संसार-दक्षयज्ञ-गज-अन्धकासुर तथा यमराज के भय आदि को अन्त करने वाले उस शङ्कर का मैं भजन करता हूँ। ९। पूर्ण विभ्रम से घूमते हुए सांपों से फरकती हुई धग धग कर जल रही माथे पर भयङ्कर आग वाला, धिम धिम कर के आवाज़ कर रहे मृदङ्ग की अत्युच्च मङ्गल ध्वनि के क्रम से प्रवृत्त किए हुए प्रचण्ड ताण्डव वाले शिव जी की जय हो। १०। पत्थर तथा विचित्र बिस्तरे में, सांप और मोतियों की माला में, कीमती रत्नों और पत्थर में, मित्र तथा शत्रुपक्षों में, तृण तथा कमलनेत्र में, प्रजा तथा राजा

शिवं भजे ॥११॥ कदा निलिम्पनिर्भरी निकुञ्जकोटरे वसन् विमुक्त-दुर्मतिः सदा शिरःस्थमञ्जलिं वहन्। विमुक्तलोललोचनो ललामभाल-लग्नकः शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ॥१२॥ इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं पठन् स्मरन् ब्रुवन् नरो विशुद्धमेति सन्ततम्। हरे गुरौ सुभक्तिमाशु याति नान्यथा गतिं विमोहनं हि देहिनां सुशङ्करस्य चिन्तनम् ॥१३॥ पूजाऽवसानसमये दशवक्त्रगीतं यः शम्भु-पूजनमिदं पठति प्रदोषे। तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरङ्गयुक्तां लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ॥१४॥ इति श्रीरावणविरचितं शिवताण्डवस्तोत्रम् ॥१४॥

१५. शिवमहिम्नस्तोत्रम्

श्री पुष्पदन्त उवाच—महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः। अथावाच्यः सर्वः स्वमति-

---

में अपने मन को समान प्रवृत्त करता हुआ मैं सदाशिव का भजन कब करूं।११। मन्दनदी के कुञ्ज के कोटर में रहते हुए, दुष्टबुद्धि को छोड़ कर, सदा सिर पर हाथ जोड़े हुए, आंखों की चञ्चलता छोड़ कर, माथे में सुन्दर अञ्जलि लगा कर 'शिव' इस मन्त्र को बोलता हुआ मैं कब पूर्ण सुखी होऊंगा।१२। इस प्रकार कहे गए इस सर्वोत्तम स्तोत्र को पढ़ते हुए, याद करते हुए, बोलते हुए, मनुष्य निरन्तर शुद्धि को प्राप्त करता है, शङ्कर जी में अच्छी भक्ति को शीघ्र प्राप्त करता है, इस के विना वह गति को प्राप्त नहीं करता, भगवान् शङ्कर का चिन्तन शरीर-धारियों को मोहित करने वाला ही है।१३। पूजा समाप्ति के समय दशमुख से गाए हुए इस शम्भुपूजन को जो मनुष्य सायंकाल पढ़ता है, उस के लिए रथ हाथी घोड़ों से युक्त सुन्दर लक्ष्मी को शम्भु सदा ही प्रदान करते हैं।१४। श्रीरावणविरचित शिवताण्डव स्तोत्र पूर्ण।१४।

श्री पुष्पदन्त बोले—यदि परमविद्वान् आप की महिमा के पार को (प्राप्त नहीं कर सकते) और ब्रह्मादि की स्तुति भी आपके योग्य नहीं है, तो फिर आप तक वाणियां समाप्त ही तो हैं, अर्थात् पार प्राप्त नहीं कर सकतीं। यदि अपनी

परिणामावधि गृणन् ममाप्येव स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१॥ अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयोर् अतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि । स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२॥ मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवतस् तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् । मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः पुनामीत्यर्थेऽस्मिन पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥३॥ तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत् त्रयीवस्तुव्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु । अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीविहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४॥ किमीहः किकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च । अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्य-

---

बुद्धि की मर्यादा तक स्तुति करने से कोई निन्दनीय नहीं हो सकता, तो हे भगवन् मेरा भी इस स्तोत्र में प्रयत्न निन्दनीय नहीं है । १ । आप की महिमा वाणी और मन के पथ को पार कर चुकी है, वेद भी जिसे चकित हो कर ही कहते हैं क्योंकि आप से कुछ व्यावृत्त तो हो नहीं सकता । आप का पद अर्वाचीन है, उसकी कौन स्तुति कर सकता है कितने प्रकार के उस के गुण हैं, वह किस के गोचर है, वहां जा कर किस के मन और वाणी पतित नहीं हो जाते । २ । शहद भरी वाणी को आप ने परम अमृत बनाया है, हे ब्रह्मरूप आप के विषय में बृहस्पति की वाणी भी विस्मय का स्थान है । मैं तो अपनी वाणी को आप के गुणों के कथन के बहाने से पवित्र कर लेता हूँ, इस कारण हे पुरमथन मेरी बुद्धि इधर चल पड़ी है । ३ । आप का ऐश्वर्य ही तो जगत् के उदय, रक्षा और प्रलय को करने वाला है । वह सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुणों में, भिन्न शरीरों में, त्रयी वस्तु में व्यस्त है, वह हे वरद—अभव्य लोगों की रमणीयता को तनिक व्याघात करने के लिए समर्थ है, उसी के नष्ट करने के लिए तो कुछ जड़बुद्धि लोग चिल्ल पौं मचाते हैं । ४ । वह विधाता क्या अभिलाषा लेकर, कौन सा शरीर धारण कर के, क्या उपाय लेकर, क्या

भवसरदुःस्था हतधियः कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥ अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगताम् । अधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति । अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥ त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च । रुचीनां वैचित्र्याद् ऋजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥ महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् । सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भूप्रणिहितां नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

आधार बना कर और किस उपादान से तीनों लोकों की रचना करते हैं? आप के ऐश्वर्य को कौन सोच सकता है, उस में अवसर न पा सकने से कुछ मन्द बुद्धि वाले लोगों को यह कुतर्क संसार के मोह के लिए चञ्चल कर देता है। ५। यह लोक जन्मरहित हैं? इन का अवयव क्या है? क्या जगत् की यह विधि जगत् के अधिष्ठाता का तिरस्कार कर के हो जाती है? जो ईश न हो वह ऐसा संसार बनाने में क्या सामग्री तैयार करेगा? इस प्रकार हे देववर मन्द लोग आप के प्रति संशय करते हैं। ६। तीनों वेद, सांख्य, योग, पशुपतिमत, वैष्णवमत आदि के सभी मतमतान्तर तो भिन्न-भिन्न मार्ग में चलते हैं और प्रत्येक अपने-अपने मार्ग को पथ्य बताते हैं। ऋजु कुटिल आदि नाना मार्गों को प्राप्त करने वाली रुचियां तो भिन्न ही हैं। उन के भिन्न हो जाने से मनुष्यों के लिए एक आप ही प्राप्तव्य हो, जैसे कि सभी जल समुद्र में ही जाते हैं। ७। हे वर देने वाले आप की सामग्री तो बूढ़ा बैल, चक्र, कुल्हाड़ा, मृगचर्म, भस्म, सांप और कपाल इतनी ही है। देवता आप की उस-उस संपदा को आप की भूमि में रखते हैं, परन्तु मनुष्य की आत्मा के उद्यान को विषयों की मृगतृष्णा कभी धोखे में नहीं डाल सकती। ८। कोई कहता है कि यह सब ध्रुव है, कोई कहता है कि यह सब

ध्रुवं कश्चित् सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये । समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव स्तुवन् जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥९॥ तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्ची हरिरधः परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः । ततो भक्तिश्रद्धाभर-गुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत् स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥ अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् । शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥ अमुष्य त्वत्सेवासमधिगत-सारं भुजवनं बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः । अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥ यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सतीम् अधश्चक्रे बाणः

अध्रुव है, दूसरे विभिन्न विषयों वाले इस संसार में ध्रुवता और अध्रुवता दोनों ही धर्म मानते हैं । हे पुरमथन, आप के इन सब रूपों में मैं विस्मित सा हो कर आप की स्तुति करता हुआ लज्जा करता हूँ, आप की स्तुति में कुछ मुखरता धृष्टता तो नहीं है । ६ । आपके ऐश्वर्य का परिच्छेद करने में ऊपर ब्रह्मा और नीचे विष्णु भी समर्थ नहीं हुए, आप तो अग्निस्कन्ध वाले शरीर को धारण किए हुए हैं । हे गिरीश, तब वह भक्ति श्रद्धा के भार से स्तुति करते हुए स्वयं ही स्थिर हो गए । हे भगवन्, आप की अनुवृत्ति क्या फल नहीं देती । १० । हे त्रिपुरारे, यह भी तो आप की भक्ति का फल था कि सिर रूपी कमलों की पंक्ति से आप के चरणकमलों में बलि चढ़ाकर रावण ने बड़ी आसानी से तीनों लोकों को वैरी रहित बनाया और अपनी बाहुओं को रण की खुजली लगा ली । ११ । आपकी सेवा से बल प्राप्ति करके उसकी बढ़ी हुई भुजाओं का समूह तो बल से कैलास पर भी आक्रमण करने लगा था आलस्य से हिले हुए अंगूठे मात्र के सिर वाले उस को पाताल में भी प्रतिष्ठा अलभ्य थी । दुष्ट को थोड़ी भी समृद्धि मिल जावे, तो वह मोह में पड़ ही जाता है । १२ । जो इन्द्र

परिजनविधेयत्रिभुवनः । न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसतरि त्वच्चरणयोर् न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥ अकाण्डब्रह्माण्ड-क्षयचकितदेवासुरकृपाविधेयस्यासीद् यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः । स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवन-भयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥ असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः । स पश्यन्नीश त्वामित-रसुरसाधारणमभूत् स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥ मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं पदं विष्णोर्भ्राम्यद्-भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् । मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥ वियद्व्यापी तारा-

---

की परम ऊंची सम्पदा को भी बाणासुर ने नीचे कर दिया और अपने नौकरों से सारे संसार पर शासन किया तो इस में आश्चर्य ही क्या है ? आप के प्रति सिर को झुकाना किसकी उन्नति के लिए नहीं हो जाता है । १३ । हे त्रिलोचन, असमय में ही ब्रह्माण्ड के क्षय से चकित, देव तथा असुरों पर कृपा के लिए वशीभूत आप ने उस समय विष का संहार कर लिया था, वही दाग़ आज भी आप के गले में क्या शोभा नहीं दे रहा, आप का वह विकार भी प्रशंसनीय है, क्योंकि आप तब संसार के नाश के भय से भीत थे । १४ । जिस के बाण कभी देवताओं असुरों या मनुष्यों में असफल नहीं हुए, परन्तु संसार भर में विजयी होते रहे । हे ईश वही आप को देखते ही कामदेव बाकी देवताओं के समान ही स्मरणीय आत्मा वाला बन गया, वशी लोगों में कभी भी तो तिरस्कार सहन करने योग्य नहीं होता । १५ । पृथ्वी पैर की चोट पड़ते ही तो झट से संशय में पड़ जाती है, विष्णु का पद भी तो घूमते हुए भुजा के परिघ से ग्रहगण को पीड़ित कर रहा है । अशान्त जटाओं से ताड़ित कोनों वाला द्युलोक भी तो दुःस्थिति में पड़ जाता है । जगत् की रक्षा के लिए आप नाचते हैं, यह आप की विभुता भी बड़ी विलक्षण ही है । १६ । ताराओं से गुना की हुई

गणगुणितफेनोद्गमरुचिः प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते। जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमित्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥ रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति। दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधिर् विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥ हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयोर् यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम्। गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥ क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥ क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृताम्

झाग के निकलने की कान्ति वाला आकाशव्यापी जल का जो प्रवाह है वह भी तो आप के सिर पर पानी की बूंद के समान है। यह संसार समुद्र का कङ्कण बना कर द्वीप के आकार में आप ने बदल दिया है। इसी से तो हे महिमा वाले आप के दिव्य शरीर का अनुमान हो सकता है। १७। आप ने त्रिपुररूपी तृण को जलाने की इच्छा से यह तो आडम्बर ही रचा था जोकि रथ, पृथ्वी, सारथी, शतधृति (वज्र), पर्वतेन्द्र, धनुष, दो चक्र, चन्द्रसूर्य, चक्रपाणि तथा वाण इकट्ठे किये। वस्तुतः अधीनों के साथ खेलते समय प्रभु लोगों की बुद्धियां कभी परतन्त्र नहीं होतीं। १८। हरि ने आप के चरणों में हज़ार कमलों की बलि को रख कर जो एक कम होने से अपने नेत्र कमल को उखाड़ फैंका, यही तो भक्ति का वह उद्रेक था, जोकि चक्र वाले उस (विष्णु) का तीनों लोकों की रक्षा के लिए बना हुआ है। १६। यज्ञ की समाप्ति हो जाने पर यज्ञ करने वालों को फल देने के लिए आप जागते रहते हो। नष्ट हुआ कर्म पुरुष की आराधना के विना कहां फल देता है? इस कारण आप को यज्ञों का फल देने के साक्षी देख कर लोग वेदों में श्रद्धा कर के कर्म करने में सदा उद्यत

ऋषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः। क्रतुभ्रेषस्त्वत्तः क्रतुफल-
विधानव्यसनिनो ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥
प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषु-
मृष्यस्य वपुषा। धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं त्रसन्तं तेऽद्या-
पि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२॥ स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्नाय
तृणवत् पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि। यदि स्त्रैणं देवी यम-
निरतदेहार्धघटनाद् अवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥२३॥
श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचराश् चिताभस्मालेपः स्रगपि
नृकरोटीपरिकरः। अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं तथापि स्म-
र्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥२४॥ मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवि-

रहते हैं।२०। (देखो) क्रियाकलाप में चतुर और शरीरधारियों का अधिपति दक्ष तो यज्ञ का पति था, ऋषि ऋत्विज थे, देवता लोग सदस्य थे, हे शरण देने वाले सदा यज्ञ का फल देने वाले आप से उस यज्ञ का भ्रंश हुआ, यह निश्चित है कि श्रद्धा के विना किए हुए यज्ञ अभिचार के लिए ही होते हैं। २१। हे नाथ, जब प्रजानाथ ब्रह्मा रमण करने की इच्छा से अपनी रोहित (मृगी) के रूप में बनी हुई पुत्री की ओर ऋष्य (मृग) के शरीर में गया, तो आप ने धनुष को हाथ में लेकर सारा आकाश छान मारा, आप से भीत वही आकाश आज भी मृगव्याध का वेग नहीं छोड़ता। २२। अपनी सुन्दरता के मद से धनुष पकड़े हुए कामदेव को दिन में तिनके की भांति जला हुआ देख कर भी हे पुरमथन यदि देवी आप के अर्धनारीश्वर रूप में स्त्रीत्व को समझती है, तो हे वरद, निश्चित ही युवतियां भोली ही होती हैं। २३। हे काम-देव का नाश करने वाले आप श्मशानों में खेलते हैं, पिशाच आप के सहचर हैं, चिता के भस्म का आप लेप करते हैं आप की माला भी तो नरकपालों का चयन ही है। इस प्रकार आप का सारा शील भले हो अमङ्गल हो तथापि हे वरद आप स्मरण करने वालों के लिए परम मङ्गलमय हो। २४। संयमी जन

धायात्तमरुतः। प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः । यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५॥ त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवहस् त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च । परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता विभ्रति गिरं न विद्मस्तत्तत्वं वयमिह हि यत्त्वं न भवसि ॥२६॥ त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरान् अकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति । तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः समस्तव्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥२७॥ भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महांस् तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम । अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहित नमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥ नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो नमः क्षोदिष्ठा·

चित्त में मन को अन्दर की ओर करके, बड़ी विधिपूर्वक न कर के भी प्राण वायु रोक करके रोंगटे फुलाते हुए मदभरे जल से आंखें गीली करके जिन आपको देख कर अमृतमय तालाब में डूबे हुए की भांति आह्लाद को प्राप्त करते हैं और अन्दर धारण करते हैं, वह कुछ वस्तु आप ही हैं । २५ । आप सूर्य हैं, आप सोम हैं, आप वायु हैं, आप अग्नि हैं, आप जल हैं, आप आकाश हैं, आप पृथ्वी हैं, और आप आत्मा हैं, इस प्रकार बंटी हुई वाणी को भेदों में परिणत लोग धारण करते हैं, परन्तु हम उस तत्त्व को नहीं जानते जोकि आप नहीं हो जाते हैं । २६ । तीनों वेदों, तीनों वृत्तियों, तीनों लोकों और तीनों देवों को अकार आदिक तीन वर्णों से कहते हुए विकार को पार किए हुए अणु ध्वनियों से अवरोध करते हुए आप का तुरीय धाम है । इस प्रकार हे शरण देने वाले आप को समस्त तथा व्यस्त रूप में ओंकार का पद स्तुति करता है । २७ । भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, महान्, भीम तथा ईशान यह जो आप के आठ नाम हैं, हे देव इन प्रत्येक में वेद भी विचरण करते हैं, हे प्रणिहित आप के इस प्रिय तेज के लिए मेरी नमस्कार हो । २८ । हे प्रियदेव, निकटतम

य स्मरहर महिष्ठाय च नमः। नमो वर्षिष्ठाय त्रिगयन यविष्ठाय च नमो नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥२६॥ बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः। जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥ कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः। इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद् वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥ असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी। लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥ असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौलेर् ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य।

आपको नमस्कार हो और दूरतम आप को नमस्कार हो। हे कामशत्रु, स्वल्पतम तथा महान्तम आप को नमस्कार हो, हे त्रिगयन महत्त्व वाले तथा अल्पता वाले आप को नमस्कार हो, सर्वरूपी तथा शर्वरूपी आप को नमस्कार हो।२६। संसार की उत्पत्ति में रजोगुणबहुल, भवरूपी आप को बार-बार नमस्कार हो। उसी के संहार के समय तमोगुणबहुल, हररूपी आप को नमस्कार हो। संसार को सुख देने के लिये सत्त्वगुण के उद्रेक वाले मृड़रूपी आप को नमस्कार हो, महत्त्वपूर्ण पद में त्रिगुणरहित शिवरूपी आप को बार-बार नमस्कार हो ।३०। क्लेश के वश में पड़ा हुआ छोटे परिणाम वाला यह चित्त कहां पर है? गुणों की सीमा को पार कर जाने वाली आप की संपदा कहां है? इस प्रकार चकित हुए मुझ को हे वरद आप की भक्ति ने यह वाक्यरूपी पुष्पों का उपहार देने को विवश किया है। ।३१। स्याही के पहाड़ के समान कज्जल हो और उसे समुद्र के पात्र में डाला जावे, कल्पवृक्ष की शाखा की लेखनी हो और पृथ्वी का पत्ता बनाया जावे फिर उसे पकड़ कर सरस्वती सदा ही लिखती रहे तो भी हे ईश आप के गुणों के पार को प्राप्त नहीं होती ।३२। देवता राक्षस और मुनिश्रेष्ठों से पूजा किये गये चन्द्रमौली के गुथे गए इस गुणमहिमा

सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार॥३३॥ अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत् पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः । स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४॥ महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः । अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३५॥

*इति श्री पुष्पदन्तविरचितं शिवमहिमस्तोत्रम् ॥१५॥

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपं विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम् । अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं चिदाकारमाकाशवासं भजेऽहम् ॥१॥ निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयं गिरा ज्ञानगोऽतीतमीशं गिरीशम् । करालं महाकालकालं कृपालुं गुणागारसंसारपारं नतोऽहम् ॥२॥ तुषाराद्रि-

---

को जो कि निर्गुण ईश्वर की है, सभी गुणों में श्रेष्ठ पुष्पदन्त नामक गन्धर्व ने लम्बे छन्दों में रुचिर बना कर यह स्तोत्र रचा । ३३ । शिव जी के इस प्रशंसनीय स्तोत्र को जो पुरुष शुद्ध चित्त होकर परमभक्ति से पढ़ता है वह शिव लोक में रुद्र के समान हो जाता है और यहां पर बहुत से धन आयु पुत्रों और कीर्ति को प्राप्त करता है । ३४ । महेश से दूसरा बड़ा देवता नहीं है, महिम-स्तोत्र से बढ़ कर स्तुति नहीं है, अघोर से बढ़ कर मन्त्र नहीं है, गुरु से बढ़ कर कोई तत्त्व नहीं है । ३५ ।

श्री पुष्पदन्त विरचित महिमस्तोत्र पूर्ण । १५ ।

मैं ईश ईशान और निर्वाणरूप आप को नमस्कार करता हूँ, जो आप विभु, व्यापक, ब्रह्म और वेद का स्वरूप हैं । उन अजन्मा, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, चित्स्वरूप तथा आकाशवासी आप का मैं भजन करता हूं । १ । जोकि निराकार हैं, ओङ्कार का मूल हैं, तुरीयस्वरूप हैं, वाणी ज्ञान और इन्द्रियों से अतीत हैं, ईश हैं, और गिरीश हैं । कराल हैं महाकाल के भी काल हैं और कृपालु हैं, गुणों के आगार हैं और संसार को पार करते हैं, मैं उन्हें नमस्कार

---

*अन्त के पांच श्लोक [illegible] हैं ।

संकाशगौरं गभीरं मनोभूतकोटिप्रभाश्री शरीरम् । स्फुरन्मौलिकल्लो-लिनी-चारुगङ्गा लसद्भालबालेन्दुकण्ठे भुजङ्गा ॥३॥ चलत्कुण्डलं शुभ्र-नेत्रं विशालं प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालुम् । मृगाधीशचर्माम्बरं मुण्डमालं प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि ॥४॥ प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं अखण्डं अजं भानुकोटिप्रकाशम् । त्रयीशूलनिर्मूलनं शूलपाणिम् भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम् ॥५॥ कलाऽतीतकल्याणकल्पान्तकारी सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी । चिदानन्दसन्दोहमोहापहारी प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥६॥ न यावदुमानाथपादारविन्दं भजन्तीह लोके परे वा नराणाम् । न तावत्सुखं शान्ति-सन्तापनाशः प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासिन् ॥७॥ न जानामि योगं जपं नैव पूजां नतोऽहं सदा

करता हूँ । २ । कैलास पर्वत के समान जो गौर वर्ण हैं, गम्भीर हैं, मन तथा भूतों की कोटि की प्रभा जैसी शोभा वाले शरीरयुक्त हैं, जिन के सिर पर लहरें मारती हुई सुन्दर गङ्गा है तथा माथे पर छोटा सा चांद है और गले में सांप हैं ।३। चलते हुए कुण्डलों वाले, सफ़ेद आंखों वाले, प्रसन्न विशाल मुख वाले, नील गले वाले, दयालु मृगराज के चर्म के वस्त्र वाले, नरमुण्डों की माला वाले, प्रिय शङ्कर को जोकि सभी के नाथ हैं, मैं भजन करता हूँ । ४ । जो प्रचण्ड हैं, प्रकृष्ट हैं, प्रगल्भ हैं, परेश हैं, अखण्ड हैं, अजन्मा हैं, करोड़ों सूर्यों के प्रकाश वाले हैं। त्रिलोकी के शूल को दूर करने वाले हैं, त्रिशूल को हाथ में लिए हुए हैं, भावनाओं से प्राप्तव्य उन का मैं भजन करता हूँ । ५ । कलाओं से अतीत कल्याण के कल्प तथा अन्तक के रिपु, सज्जनों को सदा आनन्द देने वाले त्रिपुर के शत्रु, चित्स्वरूप, आनन्द के सन्दोह, मोह को दूर करने वाले, कामदेव के शत्रु आप कृपा करके प्रसन्न होइए, प्रसन्न होइए ।६। इस लोक में चाहे कितने भी बड़े हों परन्तु वे मनुष्य जब तक उमानाथ के चरणकमलों को भजन नहीं करते तब तक उन्हें सुख और शान्ति नहीं मिलती और सन्ताप का नाश भी नहीं होता, हे प्रभो सर्वभूतों में निवास करने वाले आप प्रसन्न हूजिए । ७ ।

सर्वदा शम्भु तुभ्यम् । जरा जन्मदुःखौघतातप्यमानं प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ॥८॥

इति श्रीतुलसीदासकृतं भुजङ्गप्रयातरुद्राष्टकस्तोत्रम् ॥१६॥

॥ शिव आरती ॥१७॥

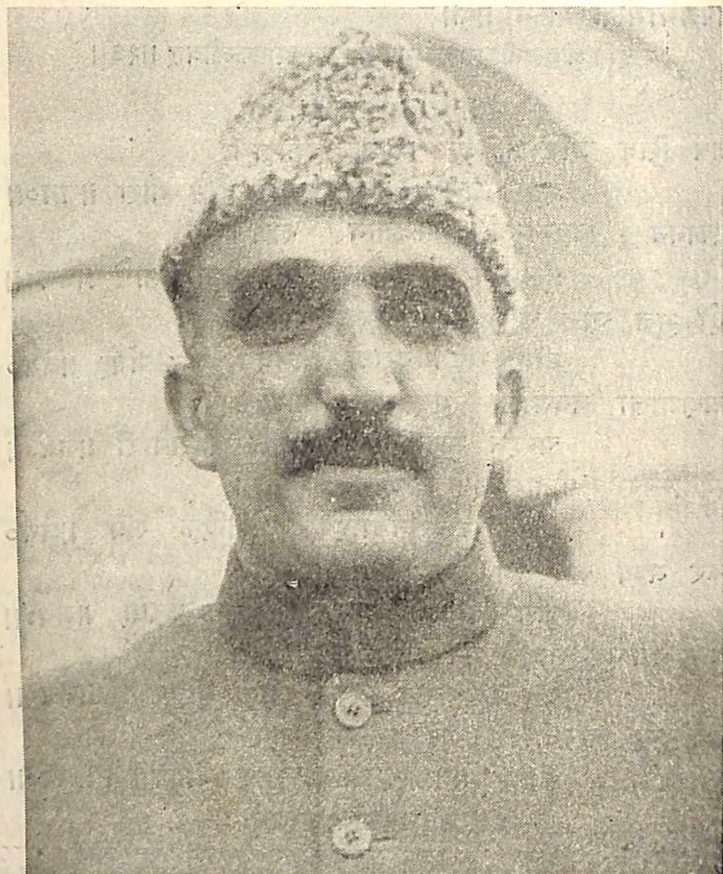
जय शिव ओंकारा, हर शिव ओंकारा ।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्धाङ्गी गौरा ॥जय०॥
एकानन चतुरानन पंचानन राजे ।
हंसासन गरुड़ासन वृषवाहन साजे ॥जय०॥
दो भुज चार चतुर्भुज दस मुख ते सोहे ।
तीनों रूप निरखता त्रिभुवन जन मोहे ॥जय०
अक्षमाला वनमाला मुण्डमाला धारी ।
चन्दन मृगमद सोहे भाले शशिधारी ॥जय०॥
श्वेताम्बर पीताम्बर बाघम्बर अंगे ।
ब्रह्मादिक सनकादिक प्रेतादिक संगे ॥जय०
कर मध्य कमण्डल चक्र त्रिशूल धरता ।
जग कर्ता जग हर्ता जग पालन करता ॥जय०॥
ब्रह्मा विष्णु सदा शिव जानत अविवेका ।
यह प्रणवाक्षर मध्य तीनों ही एका ॥जय०॥
त्रय गुण आरती शिव की जो कोई गावे ।
कहत 'शिवानन्द स्वामी' सुख सम्पत्ति पावे ॥जय०॥

—: श्रीमदमरनाथार्पणमस्तु :—

मैं योग, जप और पूजा को नहीं जानता हूं, हे शिवजी मैं सदा सर्वदा आप के प्रति प्रणाम करता हूँ। हे ईश, शम्भो, जरा, जन्म और दुःखों के समूह से बार-बार तपते हुए, आपदाओं में घिरे हुए मेरी आप रक्षा करें ।८।

श्री तुलसीदासकृत भुजङ्गप्रयातरुद्राष्टक पूर्ण ।१६।

काश्मीर के जनप्रिय नेता एवं प्रधानमन्त्री श्रीबख्शीगुलाममुहम्मद, जिनके सबल नेतृत्व में काश्मीर-राज्य ने उत्तरोत्तर प्रगति तथा भारत से अभिन्नता प्राप्त की।



नेता कश्मीरकाणां खलजनदलनो भारतीं भां दधानः
पाकिस्तानस्य शत्रुः सरलजनसखो गान्धिमार्गं प्रपन्नः।
सत्कर्ता सज्जनानां दृढनियमरतो नेहरूमित्रवर्यः
जीव्याद् बख्शी गुलामो मुहम्मदपदितो मन्त्रिमुख्यश्चिराय ॥

श्री अमरनाथ-कश्मीर यात्रा

भाग ४

Guide for Kashmir Visitors

AND

APPENDICES I to III

(काश्मीर राज्य सरकार के सौजन्य से)

Pathankot to Srinagar (Kashmir)

Pathankot (पठानकोट) is the northernmost rail-head of India, a night's train journey from Delhi and a few hour's away from Amritsar. It is a sprawling little town. From here visitors can either board a plane to Srinagar, or go by road. The air journey takes only 55 minutes, while the journey by road takes about two days. The Jammu and Kashmir Government Tourist Officer is here to assist the visitors in arranging transport and to offer any information regarding journey.

Lakhanpore (लखनपुर) 11 miles from Pathankot, after crossing river Ravi brings visitors to a permit check-post. Here is a retiring room for tourists. From here a road branches for Basohli (connecting new route to Srinagar, under construction). Visitors cross the rivers Ujha (उझ) and Basantar (बसन्तर) and leave the towns of Kathua (कठुआ), Hiranagar on the left and Samba on the right side.

Jammu (जम्मू) 56 miles from Lakhanpore. Height 1,000 feet. The office of the tourist officer is situated in the

Dak Bungalow, which is available to tourists. With temples capped by golden balls glittering in the Sun, Jammu commands the purple background of the hills and splendid scenery of the plains. Often called the city of temples. The famous temples are Sri Raghunathji's temple, Sri Ranavireshwar temple and Pirkhoh (the ancient cave of Siva). Jammu is the winter capital of the Jammu and Kashmir Government. The holy cave of Shri Vaishnu Devi is about 37 miles away from here, where thousands of pilgrims go every year, to pay homage between the months of September to November.

Udhampore (उधमपुर) 41 miles from Jammu ; 2,248 feet high, has a good Dak Bungalow, provided with complete catering arrangements. The holy shrine of Shuddha Mahadeva is a few miles away from here. The holy Devika stream flows here, in which bathing is considered auspicious.

Kud (कुद) is a popular hill-station amidst dense forests, 5,700 feet high and 24 miles away from Udhampur, has a Dak Bungalow and a Rest House, Post and Telegraph offices and a dispensary. A summer resort. No visitor can pass it without halting to taste the cool, crystal water.

Patnitop (पत्तनी टाप) 4 miles from Kud, Height 6,447 feet. From here a road branches to Sanasar (सनासर, a beautiful hill-station under development). Here is a tea shop and a tourist hut.

Batote (बटोत) 8 miles from Patnitop ; 5,170 feet above sea-level, beautiful forest surroundings make this popular hill-station really delightful, it commands an enchanting view of the Chenab Valley. From here a road branches to Bhadrawah

(भद्रवाह) and Kishtwar (किश्तवाड) alongside Chenab river. Batote has Post and Telegraph Offices, a Dak Bungalow, hotels, petrol pumps and a hospital.

Ramban (रामबन) 17 miles from Batote, height 2,250 feet. The road for Ramban descends to the river Chenab (चनाब, चन्द्रभागा) where is a suspension bridge, made entirely of iron found and fabricated in Jammu. Ramban has a rest-house, hospital and Post and Telegraph offices.

Banihal (बनिहाल) town is situated in a valley at the foot of the highest mountain range on the way to Srinagar. Height 5,650 feet. Both men and vehicles stop here for a while before starting on the big climb. Here is a Dak Bungalow besides a number of small inns and restaurants.

Upper Munda (अपर मुण्डा) is the first stop after crossing the Banihal pass. It lies at the height of 7,227 feet, and is provided with a Dak Bungalow.

Lower Munda (लोअर मुण्डा) is a little over 5 miles from Upper Munda. About a mile from here, the road branches off to **Verinag** (वेरी नाग), which is the source of the river Jhelum. In Lower Munda, one can visit a well laid-out garden built-round an octagonal spring well by the Moghul Emperor Jehangir.

Gazi Gund (काजी कुण्ड) is about 4 miles down the road from Lower Munda. Height 5,667 feet. It is provided with Dak Bungalow and the Post and Telegraph Offices.

Khanabal (खन्ना बल) lies 11 miles further on. It is the river port for Anant Nag and the road bifurcates here, one

branch going on to Srinagar and the other leading to Pahalgam (for the holy cave of Shri Amar Nath), Achabal, Anantnag and the famous springs and ruins of Martand (मार्तण्ड = मट्टन).

Awantipur (अवन्तीपुर) is now but a small village below which are the extensive ruins of the once famous city of Awantipur. This city was once the capital of the famous king Awanti-Verman, and he built two temples dedicated to Mahadeva.

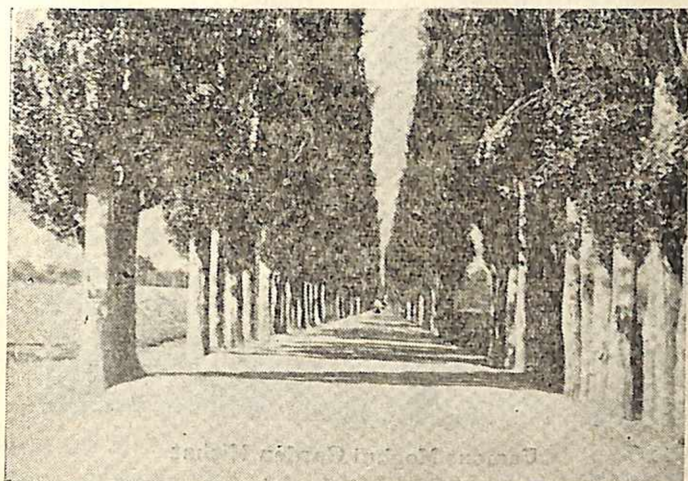
Pampore (पाम्पोर) is the last stop before the traveller arrives in Srinagar. It is only 9 miles from Srinagar. Pampore is a small town and lies in the centre of the saffron culture district of Kashmir. From here a road branches to Shopian the base for a trip to famous Achhabal waterfall and Kounsernag lake.

Srinagar (श्रीनगर), height 5,214 feet, is the summer capital of the Jammu and Kashmir Government.

Srinagar (Kashmir) – Gardens and Lakes

Srinagar laid out in a series of terraces from the foot-hills to the Dal Lake, the Moghul Gardens of Kashmir are the most beautiful gems that adorn the lovely valley. These gardens have as background magnificent mountain peaks, and the view of a green-girt watery expanse. Colourful and comfortable **Shikaras** (शिकारे) carry tourists across the lakes to the gardens. The lakes, always full of delights and fancies of life, are studded with willow avenues, floating gardens and long rows of house-boats.

श्रीनगर के राजमार्गों पर सफेदे के दीर्घकाय वृक्षों की पंक्तियां

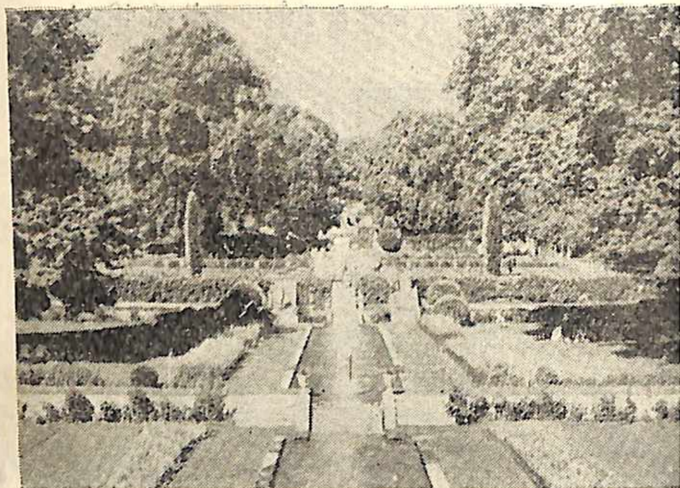


Popular Avenue On Srinagar Roads

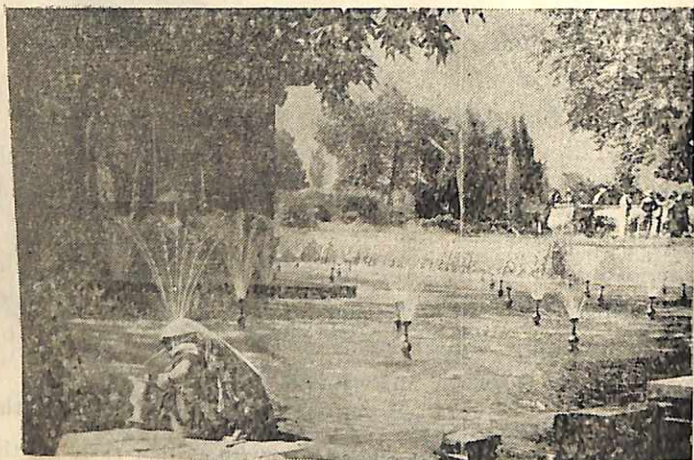
Gardens :—

Chasma Shahi (चश्मा शाही) is situated at a distance of five miles from Srinagar on the hill-side above the Dal Lake (डल झील) and as the name signifies, is famous for pure and transparent water of the "Royal Spring". This spring is enclosed by a small garden of which the fountains are fed by the same spring. The garden commands an exequisite view of the Dal lake and its environments. The garden was built by the order of the Emperor Shah Jehan.

Nishat (निशात) Two and a half miles beyond the Chashma Shahi lies this renowned pleasure garden right on the bank of the Dal Lake arranged in 10 terraces with a total



Famous Moghul Garden Nishat



Famous Moghul Garden Shalamar

length of 595 yards and 369 yards in width. It was laid out by Asaf Jah, brother of Nur Jehan. The top terrace masters a unique view of the lake below with snow clad Pir Panjal (पीर पंजाल) Range in the background.

Shalamar (शालामार). Further two miles beyond Nishat is the most famous Moghal garden built by the Emperor Jahangir in memory of his beloved Nur Jehan with whom he generally passed the summer months in this delightful retreat. This beautiful garden of dim vistas, shallow terraces and smooth sheets of falling water is cherished by visitors for picnics and is a favourite spot during moonlit nights.

Naseem (नसीम) Overlooking the Dal-lake on the other side of the Nishat, this Moghul garden was laid out by the emperor Shah Jehan. The garden has a charm of its own, devoid of fountains, cascades, water courses and flower-beds. It contains innumerable magnificent shady Chenars (चिनार) and is a delightful camping ground at distance of six miles from Srinagar.

Chenar-Bagh (चिनार बाग) is a favourite haunt of visitors for camping and mooring near the Dal Gate. House-boats are moored in well dug canals and visitors encamp in islands planted with chenars

Nehru Park is one of the latest attractions at the famous Gagri Bal lake. It faces Shankaraycharya (शङ्कराचार्य) and Palace Hotel. The park is illuminated at night.

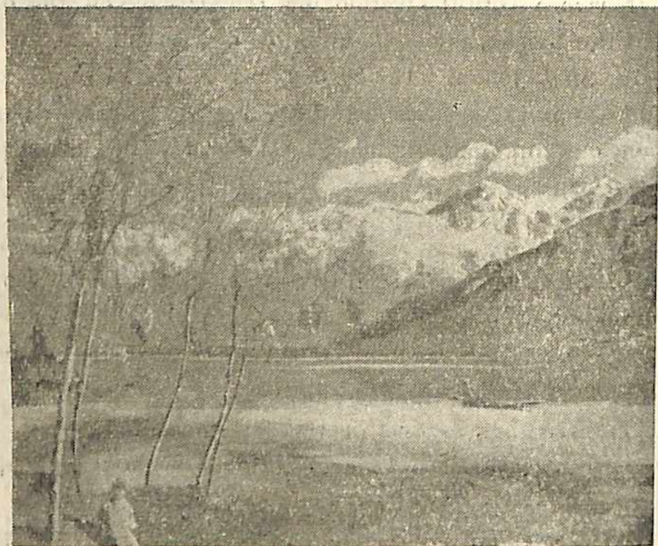
Achhabal (अच्छाबल). Thirty-nine miles to the South-East of Srinagar, this garden was laid out by Jehangir. The water

of the Achhabal spring is pure and cold having some medicinal properties considered good for stomach, kidney and bladder troubles.

LAKES

Verinag (वेरी नाग) is the copious spring which rises at the foot of the Banihal Pass, where Emperor Jehangir built a tank, beautiful buildings and gardens. Verinag was the favourite residence of its imperial founder, who desired to be taken there while on his death-bed. The Government Tourist Officer should be contacted for accommodation at the Dak Bungalow. Tourists can also go to Srinagar via Verinag, which is 3 miles South-West of the Jammu–Srinagar road.

श्रीनगर के समीप डल झील

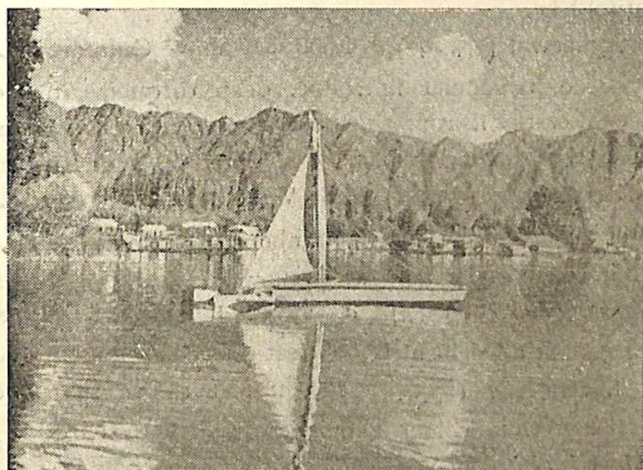


Dal Lake Srinagar

Dal (डल) Five miles long and two miles wide, spring-fed Dal lake is a beauty spot of Srinagar, full of life and gaiety. The main feature of this lake is the famous floating gardens and it is intersected by a net-work of canals.

Gagribal (गगरी बल) one of the corners of the Dal lake, is noted for very clear water where facilities are available for bathing, swimming, surf-riding and aquatic sports.

नगीन झील



Famous Nagin Lake

Nagin Lake (नगीन झील) has a peculiar charm of its own. Bathing boats, Motor boats and yachts are available for tourists interested in aquatic sports.

Anchar Lake (अंचर झील) is a small lake full of marshy sports and thick weeds. Lotus and lilies are exuberantly plentiful here.

Wular Lake (वुलर भील) fourteen miles in area and jade green in colour, is the largest lake in Kashmir. There is a sulphur spring on the North-West side in the lake about three miles from the shore that bubbles constantly.

Mansbal (मानस बल). This lake is about two miles in diameter and owing to its depth the water is blue and clear. It is surrounded by majestic hills and ruins of a pretty Moghul garden which can be seen on the western shore of this beautiful lake.

Apharwat (अफारवट) is 4,000 feet above Gulmarg. Lovely and serene, triangular in shape, deep, turquoise in colour, Apharwat carries floating snow and miniature ice-bergs on its surface. It is among the most frequented lakes of Kashmir.

Krishnasar (कृष्णसर) **and Vishnusar** (विष्णुसर) **Lakes.** Two of the prettiest lakes each about a mile in length, pale green in colour and covered with snow and ice.

Gangabal (गङ्गा बल) is situated on the slopes of Harmoukh at a height of 12,000 feet above sea-level.

Shesh Nag (शेषनाग) 12,000 feet above sea level, is emeraled green in colour and is covered with ice till June. *The lake is visited by Hindu pilgrims during August.*

Kounser Nag (कौंसर नाग) This largest mountain-lake in Kashmir is situated at an elevation of 12,000 feet, surrounded by some picturesque peaks of the Pir Panjal (पीर पंजाल) Range.

Pahalgam (Kashmir).

Pahalgam is situated in the beautiful Lidder (लिदर) Valley at an altitude of about 7,200 feet.

There is a Tourist Reception Centre at *Pahalgam* for the convenience of the visitors, which is manned by the Tourist Officer and the necessary staff. Adjacent to the Reception Lounge of this Centre, is situated the booking office of the Government Transport Sight Seeing Service. Besides hotels and tents, accomodation in Pahalgam is also available in the recently constructed Government Huts and the Dak Bunglow which are adequately furnished. The* rent for occupation of the Government huts is Rs. 1, 200/- for the season, Rs. 400/- for a month and Rs. 15/- per day. The accommodation in the Club Annexe is available at Rs. 10/- per day for 3 days only. For the recreation of the tourists, the Government Club, Pahalgam, is rendezvous.

There is a regular bus service between Srinagar and Pahalgam. The 60 mile Srinagar-Pahalgam road passes through picturesque scenery of orchard-embedded villages, beautiful streams, rice fields, walnut and Chenar trees.

Pahalgam is an excellent base, perhaps the best in Kashmir for expeditions to the wilder scenery of the higher mountains. Sona Sar, Sheshnag, *Amarnath Cave*, Tarsar, Lidarwat and the Kolahoi Glacier afford some of the wildest and most beautiful sceneries of the Himalayas and can be easily reached from Pahalgam.

In July-August devotees congregate at Pahalgam in large uumbers for a pilgrimage to the holy cave of Shree Amarnathjee. The cave is about 28 miles from Pahalgam. The route passes through high mountains and over snow-bridges. The magnificient lake Sheshnag, lies en route, 15 miles from Pahalgam.

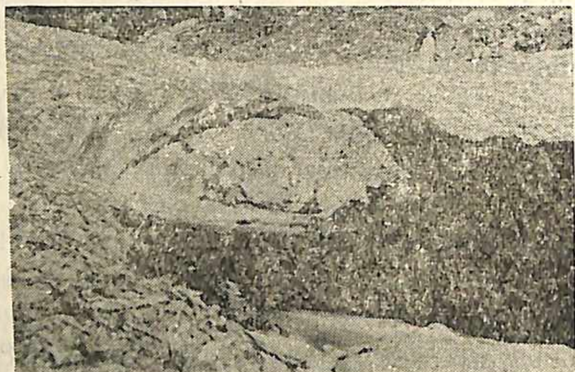
---

*Please contact the authorities for up-to-date information.

Main Pahalgam Resorts

Chandan Wari (चन्दनवाड़ी) (*Thanin* थनीन*). Eight miles from Pahalgam, it is situated at an altitude of 9, 500 feet above sea-level. This place is the first stage on the way to Amarnathjee and is only one day's hike from Pahalgam and back. It is famous for its snow-bridge and excellent picnic spots. Tourist hut accommodation available on application to the Directorate of Tourism Assistant at Pahalgam.

चन्दनवाड़ी के निकट लिदर नदी पर वर्फ का पुल ।



Snow-bridge near Chandanwari on the Lidder.

Sheshnag (शेषनाग) *Lake and Glacier*—About 12,000 feet above sea-level and 15 miles from Pahalgam. Two days' hike from Pahalgam and back. Second stage on the way to Shree Amarnathjee. The lake is a large sheet of water, of an emerald green colour on bright days and is covered with ice

---

*Please See Amarnath Mahatmya Patal 6 Sloka 1.

till June. Curiously contorted peaks rise to the south, and beyond them the splendid Kohinoor mountains.

Mahagunds (महागुनस) *Pass*, 20 miles from Pahalgam. This is the highest point that one has to pass while going to Shree Amarnathjee's cave. This place provides one of the most wonderful sights in the world and has many small lakes in the months of July and August. The highest point is 14,700 feet above sea-level, which the pilgrims cross on their way to Amarnath cave. There is an excellent bridle-path.

Kolahoi (कोलहाई) *Glacier* is a glacier, the base of which is 14,000 feet above sea-level and can be reached within 2 day's from Pahalgam. Tourist huts are available on the way. A hike from Pahalgam and back is easily completed in three days.

Tarsar (तारसार) *Lake*, 21 miles from pahalgam, it is situated at an altitude of 13,000 feet above sea level. It is about a mile long and half a mile wide. There are delightful camping sites at Sekwas about 1½ miles from the lake.

Aru (आड़ू) 7 miles fromPahalgam, path through woods, gradually ascending about 900 feet. The meadows at Aru and the veiw of the whole valley below are charming. It is here that river Lidder disappears and reappears after about 30 yards. This place is known as "Guru Khumb" (गुरु स्कम्भ).

Liderwat (लिदरवट) 7 miles from Aru. The valley open out more here and is in places densely wooded. Height 10,000 feet. This is one of the most beautiful camping grounds. Tourist Hut is available which can be easily booked. Reservation can be made on application to the Directorate of Tourism, Srinagar ; or to the Tourist Officer at Pahalgam.

Bhaumajo (भौमजू) half a mile from Bawan. Bhaumajo is famous for its caves, one of which is over 200 feet long. There is a temple in one of the caves, the porch of which has been carved out of the rock, Close to the temple, there is a fine view of the Lidder-Valley. which for fifteen miles is broad and fertile and well watered but beyond that the mountains close in, towering up precipitously to a great height.

Bawan (बवन) On the main road to Pahalgam and two miles from Martand, Bawan is one of the most beautiful camping grounds in Kashmir. There is a magnificent grove of chenar trees and hidden away in the foliage are two tanks of clear flowing water.

Tuluian Lake (तुलुयां). height 11,000 feet, 10 miles from Pahalgam via Baisaran (8,000 feet). Famous for thrilling scenes of floating ice-bergs. This is a beautiful ride through pine clad mountains and Baisaran, which is a delightful meadow and ever cherished picnic spot of the tourists.

Gulmarg–(Kashmir)

Gulmarg (गुलमर्ग), "Queen of all Indian Hill Stations," bearing a wonderful resemblance to Scotland, is a charming abode during holidays. This meadow of flowers, at an altitude of 8,500 feet above sea-level, is fringed by gigantic firs and pines. A circular road, seven miles long, circles Gulmarg. The road commands a most impressive view of the whole of the Kashmir Valley as well as the gorgeous snow-capped peaks of Nanga (नांगा) Parbat.

Main Gulmarg Resorts

Outer Circular Walk—as its name implies—circles Gulmarg. It is seven miles in length, practically level throughout,

and runs through pine forests, affording views of the 26,900 feet Nanga Parbat to the north, 16,900 feet Harmoukh and the up-lands to the south which rise up to rugged Ferozepore Nallah and Sunset Peaks and Apharwat Ridge.

Khilin Marg (खिलिन मर्ग) It takes about 40 minutes for visitors to reach Khilin Marg from Gulmarg. Beautifully carpeted by an abundance of plant life and colourful flowers. Khilin Marg presents the spectator an unrivalled sight of the peaks of Nanga Parbat and Harmoukh, the shimmering surfaces of Wular, Anchar and Dal Lakes, the isolated hill of Hari Parbat and the temple-crested mountain of Shankaracharya. The Ski-club of India has a well kept residential hut here.

Apharwat (अफारवट) **Lake** lies nestled in a hollow under the shady screen of Apharwat Mountain. The lake is traingular in shape, deep turquoise in colour, and carries floating snow and miniature icebergs on its surface. It is said that all the miniature tarns in the neighbourhood are connected with this lake. A well graded pony track joins Apharwat Ridge with Gulmarg.

Ningle Nallah (निंगल नाला) is about five miles south-west of Gulmarg. Ningle Nallah, carrying waters from the snow bed and spring near Apharwat and Ailapator, cuts through picturesque pine forests and provides many enchanting sites for picnics.

Lien Marg (लियन मर्ग) The path to Lien Marg leads through fine forests of pine and a succession of glades which vie with one another in beauty. Before entering the Marg, a fine view of Apharwat as far as Ailapator is seen.

Ferozpore Nallah (फिरोज़पुर नाला). The route to Ferozpore Nallah branches off the old well-dafined Gugaldara Road and drops sharply towards the approach to the Nallah.

Baba Rishi (बाबा ऋषि) is about three miles from the commencement of the bridle-path which branches off the circular road of Gulmarg in the vicinity of the Bazar area.

Tosh Maidan (तोष मैदान) is one of the most beautiful Margs of Kashmir. It can be reached by three marches from Gulmarg via Ferozpore Nallah. The path is steep but fit for ponies through the forests and Margs. First camp Danwas, second camp Tejjan and third camp Tosh Madain.

APPENDIX I

Permits to Enter Kashmir

Tourists entering the State of Jammu and Kashmir should be in possession of valid Kashmir Entry Permits which are obtainable from :—

I. For Indian Nationals only :

(a) Home Secretary of their respective State Government ; or (b) District Magistrates of their respective Districts ; or (c) Ministry of Defence. Government of India, New Delhi ; or (d) Commissioner of Police, Calcutta.

II. For Foreigners :

(a) residing in India temporarily or permanently from Secretary, Ministry of Defence, Government of India, New Delhi.

(b) in possession of a tourist visa from Regional Tourist Officer, Government of India at Bombay, Calcutta, Madras and New Delhi.

SRINAGAR (Kashmir) is accessible both by land and air routes. The convenient starting point in either case is Delhi. By land route one can come from Delhi to Pathankot (the railway terminus for Kashmir) by train via Ambala and Jullundur. Kashmir Mails from Delhi arrive at Pathankot in the morning and passangers can travel either by Super Deluxe buses or by air for Srinagar soon after their arrival. Government Tourist Officer, at Pathankot can be contacted at the Railway Station, either in advance or on arrival, who will render all possible assistance to the visitors.

From Pathankot it is a distance of 267 miles by road upto Srinagar (18 miles less through new Banihal pass). The Journey can be performed in Super Deluxe buses, or Station Wagons provided by the Transport Department of the Jammu and Kashmir Government at Pathankot. The entire journey is covered by the buses within two days, with a night's halt either at Kud or Batote or Banihal. Dak Bungalows and Tourist Halls exist at all these places with catering arrangements. Usually accommodation in the Dak Bungalows, Rest Houses and Tourist Halls, in the State is available according to priority of arrival, The minimum rent for one or two persons for 24 hours or part thereof is Rs. 2/- per room in Dak Bungalows, other than those at Jammu and Gulmarg: for which minimum rent is Rs. 4/- per room. Accommodation in Dak Bungalows, Rest Houses and Tourist Halls can also be booked in advance on application to the Director of Tourism, Srinagar, Kashmir, and on payment of minimum rent specified above in advance. Accommodation

in the Tourist Hall is available at annas -/8/- per head for 24 hours.

Concessional return journey tickets have been introduced by the Railways and also by the Transport Department of the Jammu and Kashmir Government for road Transport from Pathankot to Srinagar.

As for the Air route, there are daily Air services operated by the Indian Air Lines Corporation (Line 4). between Delhi and Srinagar via (i) Amritsar and Jammu, and (ii) Pathankot and Srinagar.

In Srinagar acccomodation is available in well furnished Houseboats and Hotels. The charges in hotels range from Rs. 6/- to Rs. 45/- for single room per day ; Rs. 12/- to Rs. 75/- for double room per day. As regards the charges in House-boats these also vary from : Rs. 15/- to Rs. 30/- for 1 person per day ; Rs. 24 to Rs. 40/- for 2 persons per day, Rs. 30/- to Rs. 50/- for 3 persons per day both inclusive of board and lodging. The charges for lodging only range from Rs. 250/- to Rs. 800/- per month for a full House-boat with 4 servants attached to it.

The Government Tourist Reception Centre has started functioning. The Tourist Reception Centre Srinagar is open at any time between 8 A. M. to 12 P. M.

For the convenience of the tourists who arrive here at odd hours in the night, arrangements can be made to accommodate them in the flats provided at this Centre at scheduled rates **for 24 hours only** within which period they have to make their arrangements.

All essential commodities save rice, atta and fuel are derationed. For these eatables, Ration Cards are issued by the Tourism Department on verification of Kashmir Entry Permits immediately on application to this office.

Government "Sight Seeing Buses" run to all the places of tourist interest in the valley such as—Pahalgam, Gulmarg, Sonamarg, Wuller Lake, MoghulGardens, Verinag and Kukarnag etc. on scheduled dates and timings. The fares differ according to the distance of each place and are sanctioned by the Transport Department. (Please see Appendix II).

In Gulmarg and Pahalgam accommodation is available in Hotels and furnished huts. Besides, one can camp in tents in Pahalgam. The tent rates are sanctioned by the Government. The rent for Government Huts at Gulmarg for the season are :—Rs. 400/- for 2 bed roomed hut, Rs. 600/- for 3 bed roomed hut, Rs. 800/- for 4 bed roomed hut, Rs. 1000/- for 5 bed roomed hut,

For lesser period the rent is :

15% for 7 days or less, 25% for 8 days to 15 days, 40% for 16 days to 30 days of the season's rent.

Registered guides are available at Rs. 5 per day within municipal limits of Srinagar and Rs. 7 outside the municipal limits. They will also be entitled to free board, lodging and conveyance outside the municipal limits.

Intending tourists can also obtain travel information from Kashmir Government Tourist Officer at :

(a) Bombay—Manakji Wadia Building, 129, Mahatma Gandhi Road, Fort.

(b) New Delhi – 88, Queensway.

(c) Calcutta—Kashmir Government Trade Agent, 12 Chowringhee, Road.

(d) Pathankot—Outside Railway Station.

N.B. For latest information please contact proper authorities.

APPENDIX II

Jammu and Kashmir Government Transport Tourist Service, Pathankot-Srinagar

Coach	Rs. 20/- Single
	Rs. 27/- Return
Station Wagon (8 seater)	Rs. 30/- Single
	Rs. 45/- Return
Full Station Wagon	Rs. 240/- Single Trip
	Rs. 360/- Return Trip

Jammu—Srinagar

Bus	Rs. 14/- Single
	Rs. 22/- Return
Station Wagon (8 seater)	Rs. 25/- Single
	Rs. 200/- Full for Single Trip

(No return tickets for Station Wagon from Jammu)

1. The above rates are inclusive of road toll.
2. Free luggage allowed is 30 seers for every coach/ Bus/Station-wagon seat.
3. Extra luggage will be charged @ Rs. 4/- per maund from Pathankot to Srinagar and Rs. 3/4/- from Jammu to Srinagar.
4. Cars will not be available for booking from Pathankot/Jummu to Srinagar.

5. Tickets will not be transferable.
6. Period of validity of the Return tickets is 3 months or 15th November whichever is earlier from the date of issue.
7. Child on lap will be carried free of charge.
8. Passenger carrying capacity of a Station Wagon is eight.
9. Luggage carrying capacity of a Station Wagon is 8 maunds which includes free luggage allowance.

Sight-Seeing Tours :—

1. Trip to Moghul Gardens.

Via Harwan, Shalamar, Nishat and Chashma-Shahi.

Running time.	4½ hours.
Fare	Rs. 1/12/- per seat return.

2. Srinagar-Pahalgam.

Via Pampore, Awantipure, Anantnag and Mattan.

Running time.	3 hours.
Fare	3/4 per seat single.
	Rs. 5/8/- per seat return.

3. Srinagar-Gulmarg.

Running time.	1½ hours,
Fare	Rs. 1/4/- per seat single.
	Rs. 2/4/- per seat return.

These rates do not include fare from Tangmarg to Gulmarg at a distance of 4 miles journey which is done by ponies.

4. Srinagar-Pahalgam.

Via Pampore, Awantipore, Mattan, Acchhabal, and Kokarnag.

Running time. 4½ hours.
Fare Rs. 4/4/- per seat single.
Rs. 6/8/- per seat return.

5. Lakes. Via Sopore, Watlab, Mansbal, Khirbhawani, Naseem and Nagin.

Running time. 6 hours.
Fare Rs. 4/8/- per seat single.

Srinagar-Sonamarg *via* Ganderbal

Running time 3 hours
Fare Rs. 2/8/- per seat single
Rs. 4/8/- ,, ,, return

(All return tickets on Sight-seeing services are valid only for a day).

Rates for Chartered Vehicles

(i)	Small Car	Rs. -/12/- per mile
(ii)	Big Car	Rs. 1/- per mile
(iii)	Station Wagon (9 seater)	Rs. 1/4/- per mile
(iv)	21 Seater Coach	Rs. 1/12/- per mile
(v)	29/33 seater coach	Rs. 2/- per mile

If the total distance covered is less than 30 miles the following haltage charges will be payable extra :—

Small Car	Rs. -/12/- per hour
Big Car	Rs. 1/- per hour
Station Wagon	Rs. 1/4/- per hour
Bus	Rs. 1/12/- per hour

(i) No haltage charges will be payable in respect of actual running time.

(ii) Night haltage is payable at the rate of Rs. 10/- per night for a Station Wagon and a Car and Rs. 15/- per night for a Bus.

Refunds

1. Passengers not intending to avail themselves of their return tickets will apply for refund at least 48 hours before the scheduled departure returning the ticket in original.

2. One full single fare will be deducted from the total amount paid and the balance will be refunded to the party.

3. No request for refund will be entertained if not received 48 hours before the scheduled departure time.

Reservations

1. For reservations and booking from Pathankot to Srinagar contact/write to the following :—Traffic Manager Jammu and Kashmir Government Transport Pathankot, and for Sight-Seeing and return journey bookings write/contact the :—Manager, Passenger Services, Srinagar, (Kashmir).

2. Normally 48 hours clear notice is required for booking accomodation.

3. However, no guaranttee can be given for providing accomodation on any specific date.

Note :—For latest information please contact proper authorities.

APPENDIX III.

Rate Schedule of House Boats

5. ROOMED H.B.

Special class

Rent	Board and Lodging
Rs. 800/- P.M.	One person Rs. 30/- per day
Rs. 500/- two weeks	Two persons Rs. 40/- per day

Rs. 250/- one week
Rs. 40/- per day
Rs. 3/- for every additional adult

Every additional person
Rs. 10/- per day

'A' CLASS

Rs. 650/- P.M.
Rs. 380/- two weeks
Rs. 200/- one week
Rs. 30/- per day.
Rs. 2/- for every additional adult.

One person Rs. 25/- per day
Two persons Rs. 35/- per day
Every additional person
Rs. 8/- per day.

'B' CLASS

Rs. 500/- P.M.
Rs. 340/- two weeks
Rs. 170/- one week
Rs. 22/- per day
Rs. 1/- for every additional adult.

One person Rs. 22/- per day
Two persons Rs. 32/- per day
Every additional person
Rs. 8/- per day

'C' CLASS

Rs. 350/- P. M.
Rs. 200/- two weeks
Rs. 115/- one week
Rs. 15/- per day
Rs. 1/- for every additional adult.

One person Rs. 15/- per day
Two persons Rs. 24/- per day
Every additional person
Rs. 6/- per day,

4 ROOMED H.B.

Special Class

Rs. 600/- P.M.
Rs. 375/- two weeks

One person Rs. 28/- per day
Two persons Rs. 38/- per day

Rs. 200/- one week
Rs. 30/- per day
Rs. 3/- for every additional adult.

Every additional person
Rs. 10/- per day.

'A' CLASS

Rs. 500/- P.M.
Rs. 310/- two weeks
Rs. 180/- one week
Rs. 25/- per day.
Rs. 2/- for every additional adult.

One person Rs. 22/- per day
Two persons Rs. 32/- per day
Every additional person
Rs. 8/- per day.

'B' CLASS

Rs. 350/- P.M.
Rs. 260/- two weeks
Rs. 120/- one week

One person Rs. 18/- per day
Two persons Rs. 28/- per day
Every additional person Rs. 8/- per day

Rs. 15/- per day
Rs. 1/- for every additional adult

'C' CLASS

Rs. 250/- P.M.
Rs. 160/- two weeks
Rs. 120/- one week

One person Rs. 15/- per day
Two persons Rs. 24/- per day
Every additional person
Rs. 6/ per day

Rs. 15/- per day
Rs. 1/- for every additional adult

Rent constitutes charges for lodging only. It includes the services of four servants, lighting charges and the site rent.

Each 5 Roomed H. B. can accommodate six adults and four children and each 4 roomed H. B. four adults and two children, when taken on rent for lodging only.

Children upto 10 years of age will be charged half the rate both in the case of rent and board and lodging.

H. B. owners will strongly adhere to the revised schedule of rates and the defaulter who will either overcharge or not let out the H. B. on these rates for lodging only will be liable to be brought on the office Black List for a period of five years by the Director of Tourism. Special and A Class Houseboats will provide complete bedding also.

Note :—For latest information please consult proper authorities.

आभार प्रकाशन

इस पुस्तक की सामग्री जुटाने तथा प्रकाशन में युवराज श्री कर्णसिंह सदर-इ-रियासत जी की अपार कृपा तथा प्रश्रय प्राप्त हुआ है, साथ ही कश्मीर के प्रधानमन्त्री बख्शी गुलाममुहम्मद व सदर-इ-रियासत के सेक्रेटरी कंवर श्रीनरेन्द्र सिंह जी ने अत्यधिक सहयोग दिया है। इस पुस्तक की मूलप्रति की उपलब्धि में श्री विजय चन्द्र कटोच M. Sc. तथा लाला श्री देसराज गन्दोत्रा श्रीनगर ने बहुत परिश्रम किया है। श्री गणेशदास जी Principal Information Officer जम्मू काश्मीर राज्य ने चित्रों के संग्रह में भारी सहयोग दिया है। काश्मीर राज्य के Tourist तथा Transport विभाग ने भी यथोचित सहयोग दिया है। मुद्रण में "हांडा प्रेस जालन्धर" ने बड़ी तत्परता तथा श्रद्धाभाव का परिचय दिया है। कागज़ के इस युग में श्री J. N. Saggi & Bros. जालन्धर ने बड़ा सहयोग दिया है। अतः हम इन सब के आभारी हैं और इन्हें हार्दिक धन्यवाद प्रस्तुत करते हैं।

प्रकाशक